आधुनिक काव्य साहित्य

(Modern Poetry Literature)

कामेश्वर यादव

आधुनिक काव्य-साहित्य

आधुनिक काव्य-साहित्य
(Modern Poetry Literature)

कामेश्वर यादव

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5642-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडियो, टी. वी. व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार बना। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा, जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग और यथार्थवादी युग इन चार नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र पत्रिका' भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई।

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया।

भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं।

सन् 1920 के आसपास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई, परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**आधुनिक काव्य-साहित्य का इतिहास**	**1**
	भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)	1
	द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)	2
	प्रयोगवादी युग की कविता	3
	भारतेन्दु युग	3
	नवजागरण काल	4
	भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान	5
	निर्गुण भक्ति	5
2.	**भारतेन्दु हरिश्चंद्र**	**10**
	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850- 6 जनवरी 1885)	10
	जीवन परिचय	11
	साहित्यिक परिचय	12
	प्रमुख कृतियाँ	12
	महत्वपूर्ण कार्य	18
	साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास	20
	आठवाँ दृश्य	32
3.	**प्रतापनारायण मिश्र**	**76**
	जीवनी	76
	रचनाएँ	78

वर्ण्य-विषय 78
बात 80
4. जगमोहन सिंह 126
जीवन परिचय 126
कृतियाँ 127
5. आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास 136
भारतेंदु पूर्व युग 137
भारतेंदु युग 138
द्विवेदी युग 138
रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग 139
अद्यतन काल 140
गद्य का विकास 141
आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य का विकास 141
नवजागरण काल (भारतेन्दु युग) 142
सुधार काल (द्विवेदी युग) 142
छायावादी युग 142

1

आधुनिक काव्य-साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से आरम्भ होता है। हिंदी साहित्य के इस युग में भारतीय-राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। इसी युग में हिन्दी पद्य के साथ साथ गद्य का भी विकास हुआ। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडिओ, टी वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार बना। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग और यथार्थवादी युग इन चार नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन् 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन

एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, श्रृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं।

छायावादी युग की कविता (1920)

सन् 1920 के आसपास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

प्रगतिवादी युग की कविता (1930)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है।

प्रयोगवादी युग की कविता

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप 'नयी कविता' कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त इस धारा के मुख्य कवि हैं।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर पर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाट्य वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

भारतेन्दु युग

आधुनिक हिंदी काव्य के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र

पत्रिका' भी निकाली। इसके साथ ही अनेक नाटकों आदि की रचना भी की। भारतेन्दु युग में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई।

नवजागरण काल

भारतेंदु काल को 'नवजागरण काल' भी कहा गया है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के संक्राति काल के दो पक्ष हैं। इस समय के दरम्यान एक ओर प्राचीन परिपाटी में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में जो सक्रियता बढ़ रही थी और परिस्थितियों के बदलाव के कारण जिन नये विचारों का प्रसार हो रहा था, उनका भी धीरे-धीरे साहित्य पर प्रभाव पड़ने लगा था। प्रारंभ के 25 वर्षों (1843 से 1869) तक साहित्य पर यह प्रभाव बहुत कम पड़ा, किन्तु सन् 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे थे। विचारों में इस परिवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। इसलिए इस युग को 'भारतेन्दु युग' भी कहते हैं। भारतेन्दु के पहले ब्रजभाषा में भक्ति और शृंगारपरक रचनाएँ होती थीं और लक्षण ग्रंथ भी लिखे जाते थे। भारतेन्दु के समय से काव्य के विषय चयन में व्यापकता और विविधता आई। श्रृंगारिकता, रीतिबद्धता में कमी आई। राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम कवियों के मन में भी पैदा होने लगा। उनका ध्यान सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान की ओर भी गया। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक राजनीतिक क्षेत्रों में गतिशील नवजागरण को अपनी रचनाओं के द्वारा प्रोत्साहित किया।

प्रमुख कवि

भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बाबा सुमेर सिंह, बदरी नारायण प्रेमघन (1855-1923), प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), राधाकृष्ण दास (1865-1907), अंबिका दत्त व्यास (1858-1900) और ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899) इस युग के प्रमुख कवि थे। अन्य कवियों में रामकृष्ण वर्मा, श्री निवासदास, लाला सीताराम, राय देवी प्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, नवनीत चौबे आदि हैं। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, देवकीनन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का योगदान

भारतेन्दु युग के पूर्व कविता में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। अतिशय श्रृंगारिकता, अलंकार, मोह, रीति निरूपण एवं चमत्कारप्रियता के कारण कविता जन-जीवन से कट गई थी। देशी रियासतों के संरक्षण में रहने वाले कविगण रीतिकाल के व्यामोह से न तो उबरना चाहते थे और न ही उबरने का प्रयास कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतेन्दु जी का काव्य-क्षेत्र में पदार्पण वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य के लिये वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने काव्य क्षेत्र को आधुनिक विषयों से संपन्न किया और रीति की बँधी-बँधायी परिपाटी से कविता-सुन्दरी को मुक्त करके ताजी हवा में साँस लेने का सुअवसर प्रदान किया। भारतेन्दु युग में परंपरागत धार्मिकता और भक्ति भावना को अपेक्षतः गौण स्थान प्राप्त हुआ, फिर भी इस काल के भक्ति काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

निर्गुण भक्ति

वैष्णव भक्ति

स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति–इस युग में हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की भी प्रचुर परिणाम में रचना हुई। भारतेन्दु युग के कवियों की सबसे बड़ी साहित्यिक देन केवल यही मानी जा सकती है कि उन्होंने कविता को रीतिकालीन परिवेश से मुक्त करके समसामयिक जीवन से जोड़ दिया। भारतेन्दु आधुनिक काल के जनक थे और भारतेन्दु युग के अन्य कवि उनके प्रभामंडल में विचरण करने वाले ऐसे नक्षत्र थे, जिन्होंने अपनी खुली आँखों से जन-जीवन को देखकर उसे अपनी कविता का विषय बनाया। इस काल में कविता और जीवन के निकट का संबंध स्थापित हुआ और यही इस कविता का महत्व है।

भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)

भारतेंदु युग ने हिंदी कविता को रीतिकाल के श्रृंगारपूर्ण और राज-आश्रय के वातावरण से निकाल कर राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत-प्रेत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया। इस युग की काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नानुसार हैं–

1. देशप्रेम की व्यंजना –अंग्रेजों के दमन चक्र के आतंक में इस युग के कवि पहले तो विदेशी शासन का गुणगान करते नजर आते हैं–

परम दुखमय तिमिर जबै भारत में छायो,
तबहिं कृपा करि ईश ब्रिटिश सूरज प्रकटायो॥

किंतु शीघ्र ही यह प्रवृत्ति जाती रही। मननशील कवि समाज राष्ट्र की वास्तविक पुकार को शीघ्र ही समझ गया और उसने स्वदेश प्रेम के गीत गाने प्रारम्भ कर दिए–

बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।
खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेष।

(बालमुकुन्द गुप्त)

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, ईश्वर से स्वतंत्रता की प्रार्थना आदि रूपों में भी यह भावना व्यक्त हुई। इस युग की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है, जिसमें हिंदू राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

देश-प्रेम की भावना के कारण इन कवियों ने एक ओर तो अपने देश की अवनति का वर्णन करके आंसू बहाए तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की आलोचना करके देशवासियों के मन में स्वराज्य की भावना जगाई। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा–

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमाशा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आसा॥

इसी प्रकार जब काबुल पर अंग्रेजों की विजय होने पर भारत में दिवाली मनाई गई तो भारतेंदु ने उसका विरोध करते हुए लिखा –

आर्य गनन कों मिल्यौ, जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यों, यह नहिं जान्यौ जात॥
सुजस मिलै अंग्रेज को, होय रूस की रोक।
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य पै, हमको केवल सोक॥

2. सामाजिक चेतना और जन-काव्य–समाज-सुधार– इस युग की कविता का प्रमुख स्वर रहा। इन्होंने किसी राजा या आश्रयदाता को संतुष्ट करने के लिए काव्य-रचना नहीं की, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से जनता तक अपनी भावना पहुंचाने के लिए काव्य रचना की। ये कवि पराधीन भारत को जगाना चाहते थे, इसलिए समाज-सुधार के विभिन्न मुद्दों जैसे स्त्री-शिक्षा,

विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा का प्रचार, समाज का आर्थिक उत्थान और समाज में एक-दूसरे की सहायता आदि को मुखरित किया, यथा -

निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव को पहिचानैं।
स्त्री-गण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यज्ञ लेवैं ॥

(प्रताप नारायण मिश्र)

हे धनियो क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार॥

3. भक्ति-भावना–इस युग के कवियों में भी भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है, लेकिन इनकी भक्ति-भावना का लक्ष्य अवश्य बदल गया। अब वे मुक्ति के लिए नहीं, अपितु देश-कल्याण के लिए भक्ति करते दिखाई देते हैं -

कहाँ करुणानिधि केशव सोए।
जगत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।

(भारतेंदु हरिश्चंद्र)

4. हिंदू-संस्कृति से प्यार–पिछले युगों की प्रतिक्रिया स्वरूप इस युग के कवि-मानस में अपनी संस्कृति के अनुराग का भाव जाग उठा। यथा -

सदा रखें दृढ़ हिय मँह निज साँचा हिन्दूपन।
घोर विपत हूँ परे दिगै नहिं आन और मन ॥

(बालमुकुन्द गुप्त)

5. प्राचीनता और नवीनता का समन्वय– इन कवियों ने एक ओर तो हिंदी-काव्य की पुरानी परम्परा के सुंदर रूप को अपनाया, तो दूसरी ओर नयी परम्परा की स्थापना की। इन कवियों के लिए प्राचीनता वंदनीय थी तो नवीनता अभिनंदनीय। अतः ये प्राचीनता और नवीनता का समन्वय अपनी रचनाओं में करते रहे। भारतेंदु अपनी 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में 'प्रभाती' के रूप में प्राचीन परिपाटी के अनुसार कृष्ण को जगाते हैं और नवीनता का अभिनंदन करते हुए उसमें राष्ट्रीयता का समन्वय करके कहते हैं –

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।

6. निज भाषा प्रेम– इस काल के कवियों ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के रूप में हिंदी-प्रचार को विशेष महत्त्व दिया और कहा -

(क) निज-भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

(भारतेंदु)

(ख) जपो निरंतर एक जबान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।

(प्रताप नारायण मिश्र)

यद्यपि इस काल का अधिकतर साहित्य ब्रजभाषा में ही है, किंतु इन कवियों ने ब्रजभाषा को भी सरल और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। खड़ी बोली में भी कुछ रचनाएँ की गई, किंतु वे कथात्मकता और रुक्षता से युक्त हैं।

7. शृंगार और सौंदर्य वर्णन–इस युग के कवियों ने सौंदर्य और प्रेम का वर्णन भी किया है, किंतु उसमें कहीं भी कामुकता और वासना का रंग दिखाई नहीं पड़ता। इनके प्रेम-वर्णन में सर्वत्र स्वच्छता एवं गंभीरता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य से एक उदाहरण दृष्टव्य है–

हम कौन उपाय करै इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँकियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।।

8. हास्य-व्यंग्य– भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके सहयोगी कवियों मे हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी मिलती है। उन्होंने अपने समय की विभिन्न बुराइयों पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। भारतेंदु की कविता से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(क) भीतर भीतर सब रस चूसै

हंसि-हंसि कै तन-मन-धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।।

(ख) इनकी उनकी खिदमत करो,

रुपया देते-देते मरो।
तब आवैं मोहिं करन खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब।।

9. प्रकृति-चित्रण–इस युग के कवियों ने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा प्रकृति के स्वतंत्र रूपों का विशेष चित्रण किया है। भारतेंदु के 'गंगा-वर्णन' और 'यमुना-वर्णन' इसके निदर्शन हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह के स्वतंत्र प्रकृति के वर्णन भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। प्रकृति के उद्दीपन रूपों का वर्णन भी इस काल की प्रवृत्ति के रूप में जीवित रहा।

10. रस–इस काल में शृंगार, वीर और करुण रसों की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति प्रबल रही, किंतु इस काल का शृंगार रीतिकाल के शृंगार जैसा नग्न शृंगार

न होकर परिष्कृत रुचि का शृंगार है। देश की दयनीय दशा के चित्रण में करुण रस प्रधान रहा है।

11. भाषा और काव्य-रूप—इन कवियों ने कविता में प्रायः सरल ब्रजभाषा तथा मुक्तक शैली का ही प्रयोग अधिक किया। ये कवि पद्य तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि गद्यकार भी बने। इन्होंने अपनी कलम निबंध, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी चलाई। इस काल के कवि मंडल में कवि न केवल कवि था बल्कि वह संपादक और पत्रकार भी था।

2

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850- 6 जनवरी 1885)

आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक,

निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

जीवन परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्‌भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान॥

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी घणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुंदर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेंदु ने साहित्य सेवा प्रारंभ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु'(भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन)
सत्य हरिश्चन्द्र (1875, नाटक)

श्री चंद्रावली (1876, नाटिका)

विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण)

भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),

नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।

अंधेर नगरी (1881, प्रहसन)

प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका)

सती प्रताप (1883, अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीतिरूपक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)

अनूदित नाट्य रचनाएँ

विद्यासुन्दर (1868, नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद)

पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद)

धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद)

कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद)

भारत जननी (1877, नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित)

मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद)

दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)

निबंध संग्रह

भारतेन्दु ग्रन्थावली (तृतीय खंड) में संकलित।

'नाटक' शीर्षक प्रसिद्ध निबंध(1883)।

प्रमुख निबन्ध

नाटक

कालचक्र (जर्नल)

लेवी प्राण लेवी

भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
कश्मीर कुसुम
जातीय संगीत
संगीत सार
हिंदी भाषा
स्वर्ग में विचार सभा
काव्यकृतियां
भक्तसर्वस्व (1870)
प्रेममालिका (1871),
प्रेम माधुरी (1875),
प्रेम-तरंग (1877),
उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
प्रेम-प्रलाप (1877),
होली (1879),
मधु मुकुल (1881),
राग-संग्रह (1880),
वर्षा-विनोद (1880),
विनय प्रेम पचासा (1881),
फूलों का गुच्छा- खड़ीबोली काव्य (1882)
प्रेम फुलवारी (1883)
कृष्णचरित्र (1883)
दानलीला
तन्मय लीला
नये जमाने की मुकरी
सुमनांजलि
बन्दर सभा (हास्य व्यंग)
बकरी विलाप (हास्य व्यंग)
कहानी
अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न
यात्रा वृत्तान्त
सरयूपार की यात्रा

लखनऊ
आत्मकथा
एक कहानी– कुछ आपबीती, कुछ जगबीती
उपन्यास
पूर्णप्रकाश
चन्द्रप्रभा
वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द–गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविता शृंगार–प्रधान, भक्ति–प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

शृंगार रस प्रधान भारतेंदु जी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। वियोगावस्था का एक चित्र देखिए–

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आंखें ये खुली ही रह जायगी।

भक्ति प्रधान भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनको कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं–

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम–रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं -

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्मपूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अत: उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं-

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई॥

प्रकृति वर्णन का यह उदहारण देखिये, जिसमे युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है-

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये॥

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था।

फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते-बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानत: ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां-तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी मिल जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यवहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं -

1. **रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली**–श्रृंगारिक कविताओं में,
2. **भावात्मक शैली**–भक्ति के पदों में,
3. **व्यंग्यात्मक शैली**–समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. **उद्‌बोधन शैली**–देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है। श्रृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है। श्रृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्राय: सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान

दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चौती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।।

महत्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु बहूमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। भारतेंदु जी हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेंदु जी अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं संपूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था –

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार॥

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होने कहा–

यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो–चार आने कौन देगा, और साधारण–सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया–आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में, तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है। जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब–किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' नाम से उन्होने एक व्यंग्य कविता लिखी–

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।
बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय।
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचौं हाय हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय। दुनिया उल्टी हाय हाय।
रोजी बिल्टी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।
किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।
दाँत पीसी हाय हाय। एडिटर पोसी हाय हाय।
बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।
चरब–जुबानी हाय हाय। शोख बयानि हाय हाय।
फिर नहीं आनी हाय हाय।

अपने इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हरिश्चंद्र चंद्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य-विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होने लॉर्ड मेयो को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य-विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होने तदीय समाज की स्थापना की जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था,

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कवित्त,

मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था -

जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्राय: कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।

यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में दादाभाई नौरोजी ने धन के अपवहन यानी ड्रेन ऑफ वेल्थ के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था -

अंगरेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था -

भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो। "

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। ददरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए-

हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंगरेज फ्रांसिस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं–

बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हरा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया।

वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई॥

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णतः खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया,

सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले न जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा,

यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।

नीलदेवी -

नीलदेवी

ऐतिहासिक गीतिरूपक

वियोगांत

प्रथम दृश्य

हिमगिरि का शिखर

(तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं)

अप्सरागण.. (झिंझोटी जल्द तिताला)

धन धन भारत की छत्रनी।
वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग जानी।।
सती सिरोमनि धरमधुरन्धर बुधि बल धीरज खानी।
इन के जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी ।।
सब मिलि गाओ प्रेम बधाई।
यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई ।।
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई ।।
हाव भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोन विंजन सो सबही प्रेम रहित दरसाई ।।
प्रेमहि सो हरिहू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ।।

दूसरा दृश्य

युद्ध के डेरे खड़े हैं।

एक शामियाने के नीचे अमीर अबदुश्शरीफ खाँ सूर बैठा है और मुसाहिब लोग इर्द-गिर्द बैठे हैं।

शरीफ–एक मुसाहिब से, अबदुस्समद! खूब होशियारी से रहना। यहाँ के राजपूत बड़े काफिर हैं। इन कमबख्तों से खुदा बचाए। दूसरे मुसाहिब से, मलिक सज्जाद! तुम शव के पहरों का इन्तिजाम अपने जिम्में रक्खो न हो कि सूरजदेव शबेखून मारे। काजी से, काजी साहब! मैं आप से क्या बयान करूँ, वल्लाही सूरजदेव एक ही बदबला है। इहातए पंजाब में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं।

काजी–बेशक हुजूर! सुना गया है कि वह हमेशा खेमों ही में रहता है। आसमान शामियाना और जमीन ही उसे फर्श है। हजारों राजपूत उसे हरवक्त घेरे रहते हैं।

शरीफ–वल्लाह तुमने सच कहा, अजब बदकिरदार से पाला पड़ा, जाना तंग है। किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते।

मुसाहिब–खुदाबन्द! हाथ आना दूर रहा उसके खौफ से अपने खेमे में रह कर भी खाना सोना हराम हो रहा है।

शरीफ–कभी उस बेईमान से सामने लड़ कर फतह नहीं मिलनी है। मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौका पाकर एक शब उसको सोते हुए गिरफ्तार कर लाना। और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का जिल्वा हिन्दोस्तान जुल्मत निशान में दिखलाना मंजूर है तो बेशक मेरी मुराद बर आएगी।

काजी–इन्शा अल्लाह तआला।

शरीफ–कसम है कलामे शरीफ को मेरी खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई है। सब लोगों से, देखो अब मैं सोने जाता हूँ तुम सब लोग होशियार रहना।

गजल,

उठ कर सब की तरफ देख कर,
इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार।
गफलत न जश्रा भी हो खबरदार खबरदार ।।
ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा।
काफिर है य पंजाब का सरदार है खबरदार ।।

अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है।
बिजली है गजब इसकी है तलवार खबरदार ।।
दरबार में वह तेगे शररवार न चमके।
घरबार से बाहर से भी हर बार खबरदार ।।
इस दुश्मने ईमाँ को है धोखे से फँसाना।
लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार ।।
(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

पहाड़ की तराई

(राजा सूर्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं)

सू–कहो भाइयो इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है।

1. ला.–तो महाराज! जब तक प्राण हैं तब तक लड़ेंगे।

2. रा–महाराज! जय पराजय तो परमेश्वर के हाथ है परंतु हम अपना धर्म्म तो प्राण रहे तक निवाहैं ही गे।

सू.–हाँ हाँ, इसमें क्या संदेह है। मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहैं।

3. रा.–महाराज! सब सावधान हैं। धर्म्म युद्ध में तो हमको जीतने वाला कोई पृथ्वी पर नहीं है।

नी.दे.–पर सुना है कि ये दुष्ट अधर्म्म से बहुत लड़ते हैं।

सू.–प्यारी। वे अधर्म्म से लड़ेंगे हम तो अधर्म्म नहीं न कर सकते। हम आर्यवंशी लोग धर्म्म छोड़ कर लड़ना क्या जानैं? यहां तो सामने लड़ना जानते हैं। जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू हैं, और यश तो जीतै तो भी हमारा साथ है और मरैं तो भी।

4. था.–महाराज। इसमें क्या संदेह है, और हम लोगों को एकाएकी अधर्म्म से भी जीतना कुछ दाल भात का गस्सा नहीं है।

नी.दे.–तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए। आप लोग सब तरह चतुर हो मैं इसमें विशेष क्या कहूँ स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता।

सू. दे.–(आदर से) प्यारी। कुछ चिंता नहीं है अब तो जो कुछ होगा देखा ही जायगा न। (राजपूतों से)।

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैनहूँ सोअहिं नाहीं ।।
कसे रहैं कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
असव पीठ सो होंहि चारजामें जिनि न्यारे ।।
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन।
रहै खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरें छन ।।
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर।
आवहिं तो चड़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर ।।
दैहैं रन को स्वाद तुरंतहि तिनहिं चखाई।
जो पै इक छन हू सनमुख ह्वै करिहिं लराई ।।

(जवनिका पतन)

चौथा दृश्य

सराय

(भठियारी, चपरगट्टू खाँ और पीकदान अली)

चप.–क्यों भाई अब आज तो जशन होगा न? आज तो वह हिंदू न लड़ेगा न।

पीक.–मैंने पक्की खबर सुनी है। आज ही तो पुलाव उड़ने का दिन है।

चप.–भई मैं तो इसी से तीन चार दिन दरबार में नहीं गया। सुना वे लोग लड़ने जायंगे। मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है। यहाँ तो सदा भागतों के आगे मारतों के पीछे। जबान की तेग कहिए दस हजार हाथ झारूँ।

पीक.–भई इसी से तो कई दिन से मैं भी खेमों की तर्फ नहीं गया। अभी एक हफ्ता हुआ मैं उस गाँव में एक खानगी है उसके यहाँ से चला आता था कि पाँच हिन्दुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे चपतियाने। मैंने देखा कि अब तो बेतरह फँसे मगर वल्लाह मैंने भी अपने कौम और दीन की इतनी मजम्मत और हिन्दुओं की इतनी तारीफ की कि उन लोगों को छोड़ते ही बन आई। ले ऐसे मौके पर और क्या करता? मुसल्मानी के पीछे अपनी जान देता?

चप.–हाँ जी किसकी मुसल्मानी और किसका कुफ्र। यहाँ अपने मांड़े हलुए से काम है।

भठि.–तो मियाँ आज जशन में जाना तो देखो मुझको भूल मत जाना। जो कुछ इनाम मिलै उसमैं भी कुछ देना। हाँ! देखो मैंने कई दिन खिदमत की है।

पीक.–जरूर जरूर जान छल्ला। यह कौन बात है तुम्हारे ही वास्ते तो जी पर खेलकर यहाँ उतरें हैं। (चपरगट्टू से कान में) यह सुनिए जान झोवें+ हम माल चाभैं बी भटियारी। यह नहीं जानतीं कि यहाँ इनकी ऐसी ऐसी हजारों चरा कर छोड़ दी हैं।

चप.–(धीरे से) अजी कहने दो कहने से कुछ दिये ही थोड़े देते हैं। भटियारी हो चाहे रंडी, आज तो किसी को कुछ दिया नहीं है उलटा इन्हीं लोगों का खा गए हैं (भटियारी से) वाह जान तक हाजिर है। जब कहो गरदन काट कर सामने रख दूँ। (खूब घूरता है।)

भटि.–(आँखें नचाकर) तो मैं भी तो मियाँ की खिदमत से किसी तरह बाहर नहीं हौं।

दोनो गाते हैं,

पिकदानों चपरगट्टू है बस नाम हमारा।
इक मुफ्त का खाना है सदा काम हमारा ।।
उमरा जो कहै रात तो हम चाँद दिखा दें।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा ।।
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी का।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा ।।
हो रंज जहाँ पास न जाएँ कभी उसके।
आराम जहाँ हो है वहाँ काम हमारा ।।
जर दीन है कुरप्रान है ईमां है नबी है।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम हमारा ।।

भटि.–ले मैं तो मियाँ के वास्ते खाना बनाने जाती हूँ।

पिकदान–तो चलो भाई हम लोग भी तब तक जरा 'रहे लाखों बरस साकी तेरा आबाद मैखाना'।

चपर.–चलो।

(जवनिका पतन)

पंचम दृश्य

(सूर्यदेव के डेरे का बाहरी प्रान्त)

(रात्रि का समय)

देवा सिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है।
नेपथ्य में गान
(राग कलिगड़ा)
सोंओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात
पातहु नहिं पावत तरुन हलन ।।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सिरी पवन चलन।
सोए जग के सब नींद घोर,
जागत काम चिंतित चकोर,
बिरहिन बिरही पाहरू चोर,
इन कहं छन रैनहूं हाय कल न ।।

सिपाही–बरसों घर छूटे हुए। देखें कब इन दुष्टों का मुँह काला होता है। महाराज घर फिर कर चलैं तो देस फिर से बसै। रामू की माँ को देखे कितने दिन हुए। बच्चा की खबर तक नहीं मिली (चौंक कर ऊँचे स्वर से) कौन है? खबरदार जो किसी ने झूटमूठ भी इधर देखने का विचार किया। (साधारण स्वर से) हां-कोई यह न जानै कि देवासिंह इस समय जोरू लड़कों की याद करता है इससे भूला है। क्षत्री का लड़का है। घर की याद आवै तो और प्राण छोड़कर लडै। (पुकारकर) खबरदार। जागते रहना।

(इधर उधर फिर कर एक जगह बैठकर गाता है)
(कलिगड़ा)
प्यारी बिन कटत न कारी रैन।
पल छिन न परत जिय हाय चैन ।।
तन पीर बढ़ी सब छुटयो धीर,
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन।

जिय तड़फड़ात सब जरत गात,
टप टप टकत दुख भरे नैन ।।
परदेस परे तजि देस हाय,
दुख मेटन हारो कोउ है न।
सजि विरह सैन यह जगत जैन,
मारत मरोरि मोहि पापी मैन ।।
प्यारी बिन कटत न कारी रैन।
(नेपथ्य में कोलाहल)
कौन है। यह कैसा शब्द आता है। खबरदार।
(नेपथ्य में विशेष कोलाहल)
(घबड़ाकर) हैं यह क्या है? अरे क्यों एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है। बीर सिंह! बीर सिंह! बीर सिंह जागो। गांविद सिंह दौड़ो!

नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार मार का शब्द। शस्त्र खींचें हुए अनेक यवनों का प्रवेश। अल्ला अकबर का शब्द। देवासिंह का युद्ध और पतन। यवनों का डेरे में प्रवेश। पटाक्षेप।

भारतेंदु हरिश्चंद्र
अध्याय 2 पीछे

छठवाँ दृश्य

अमीर का खेमा
(मसनद पर अमीर अबदुश्शरीफ खाँ सूर बैठा है। इधर उधर
मुसल्मान लोग हथियार बाँधे मोछ पर ताव देते बड़ी शान से बैठे हैं।)

अमीर–अलहम्दुलिल्लाह! इस कम्बख्त काफिर को तो किसी तरह गिरफ्तार किया। अब बाकी फौज भी फतह हो जायेगी।

1 सर्दार–ऐ हुजूर, जब राजा ही कैद हो गया तो फौज क्या चीज है। खुदा और रसूल के हुक्म से इसलाम की हर जगह फतह है। हिंदू हैं क्या चीज। एक तो खुदा की मार दूसरे बेवकूफ आनन फानन में सब जहन्नुमरसीद होंगे।

2 सर्दार–खुदाबंद! इसलाम के आफताब के आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है? हुजूर अच्छी तरह से यकीन रक्खैं कि एक दिन ऐसा आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा। कुफ्फांर सब दाखिले दोजख होंगे और पयगँबरे आखिरूल् जमां सल्ल–ल्लाह अल्लै हुम्सल्लम का दीन तमाम रूए जमीन पर फैल जायेगा।

अमीर–आमीं आमीं।

काजी–मगर मेरी राय है कि और गुफ्तगू के पेश्तर शुकरिया अदा किया जाय क्योंकि जिस हकतआला की मिहरबानी से यह फतह हासिल हुई है सबके पहिले उस खुदा का शुक्र अदा करना जुरूर है।

सब–बेशक, बेशक।

(काजी उठकर सब के आगे घुटने के बल झुकता है और फिर अमीर आदि भी उसके साथ झुकते हैं)

काजी–(हाथ उठाकर) काफिर पै मुसल्माँ को फतहयाब बनाया।

सब–(हाथ उठाकर) अलहमद् उलिल्ला ह।

काजी–की मेह बड़ी तूने य बस मेरे खुदाया।

सब–अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी–सदके में नवी सैयदे मक्की मदनी के, अतफाले अली के असहाब के, लश्कर मेरा दुश्मन से बचाया।

सब–अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी–खाली किया इक आन में दैरों को सनम से, शमशीर दिखा के, बुतखानः गिरा कर के हरम तूने बनाया।

सब–अलहम्द् उल्लिल्लाह।

काजी–इस हिंद से सब दूर हुई कुफ्र की जुल्मत, की तूने वह रहमत, नक्कारए ईमां को हरेक सिम्त बजाया।

सब–अलहम्द् उल्लिल्लाह।

काजी–गिरकर न उठे काफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए गारत। आमीं कहो।

सब–आमीं।

काजी–मेरे महबूब खुदाया।

सब–अलहम्द् उल्लिल्लाह।

(जवनिका गिरती है)

सातवाँ दृश्य

कैदखाना। महाराज सूर्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पड़े हैं।

एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है।

देवता कृ

लावनी,
सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वैहै।
सो दिन फिर इत सपनेहूं नहिं ऐहै ।।
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै ।।
दुख ही दुख करिहै चारहु ओर प्रकासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
इस कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै ।।
वीरता एकता ममता दूर सिधरि है।
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरि है ।।
ह्वै जैहै चारहु बरन शूद्र वनि दासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
ह्वैहैं सब इनके भूत पिशाच उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी ।।
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी।
निज हरि सों ह्वै हैं बिमुख भरत भुवबासी ।।
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा।
अब तजहुं बीर बर भारत की सब आसा ।।
अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहि पराई।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई ।।
तुरकन हित करिहैं हिंदू संग लराई।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ।।
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बल धारी।
यह दैहैं जिय सों सबही बात बिसारी ।।
हरि विमुख धरम बिनु धन, बलहीन दुखारी।
आलसी मंद तन छीन छुछित संसारी ।।

सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रसा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
(जाता है)

सू. दे.–(सिर उठा कर) यह कौन था? इस मरते हुए शरीर पर इस ने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया? अरे अभी तो यहां खड़ा गा रहा था अभी कहाँ चला गया? निस्संदेह यह कोई देवता था। नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है। ऐसा सुंदर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है। क्या कहता था? 'अब तजहु वीर वर भारत की सब आसा' ऐं! यह देववाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा? क्या अब भारत का स्वाधीनता सूर्य फिर न उदय होगा? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ैगी? हाय! क्या मरते मरते भी हमको यह वज्र शब्द सुनना पड़ा? और क्या कहा 'सुख सौं सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा।' हाय! क्या अब यहाँ यही दिन आबैगे? क्या भारत जननी अब एक भी वीर पुत्र न प्रसव करैगी? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है? हा! मैं यह सुनकर क्यों नहीं मरा कि आर्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए। हाय!

(हाय करता और रोता हुआ मुर्छित हो जाता है)

(जवनिका पतन)

आठवाँ दृश्य

मैदान-वृक्ष

(एक पागल आता है)

पागल–मार मार मार-काट काट काट-ले ले ले-ईबी-सीबी-बीबी-तुरक तुरक तुरक-अरे आया आया आया-भागो भागो भागो। (दौड़ता है) मार मार मार-और मार दे मार-जाय न जाय न-दुष्ट चांडाल गोभक्षी जवन-अरे हाँ रे जवन-लाल डाढ़ी का जवन-बिना चोटी का जवन-हमारा सत्यानाश कर डाला। हमारा हमारा हमारा। इसी ने इसी ने-लेना जाने न पावै। दुष्ट म्लेच्छ हूँ। हमको राजा बनावैगा। छत्र चँबर मुरछल सिंहासन सब-पर जवन का दिया-मार मार मार-शस्त्र न हो तो मंत्र से मार। मार मार मार। फट चट पट-जवन पट-षट-छट पट-आँ ई ऊँ आकास बाँध पाताल-चोटी कटा निकाल। फः-हां हीं हौं-जवन

जवन मारय मारय उच्चाटय उच्चाट्य.....बेधय बेधय.....नाशय.....नाशय फाँसय फाँसय-त्रासय त्रसय.....स्वाहा फूरू सब जवन स्वाहा फूरू अब भी नहीं गया? मार मार। हमारा देश-हम राजा हम रानी। हम मंत्री। हम प्रजा। और कौन? मार मार मार। तलवार तलवार। टूट गई टूटी। टूटी से मार। ढेले से मार। हाथ से मार। मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईंटा पत्थर-पानी सबसे मार हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़ पत्ता कपड़ा लत्ता छाता जूता सब हमारा। ले चला ले चला। मार मार मार-जाय न जाय न-सूरज में जाय चंद्रमा में जाय जहां जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय जहाँ जाय वहीं पकड़-मार मार मार। मीयाँ मीयाँ मीयाँ चीयाँ चीयाँ चीयाँ। अल्ला अल्ला अल्ला हल्ला हल्ला हल्ला। मार मार मार। लोहे के नाती की दुम से मार पहाड़ की स्त्री के दिये से मार-मार मार-अंड का बंड का संड का खंड़-धूप छाँह चना मोती अगहन पूरा माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार। ईट की आँख में हाथी का बान-बंदर की थैली में चूने की कमान-मार मार मार-एक एक एक मिल मिल मिल-छिप छिप छिप-खुल खुल खुल-मार मार मार-

(एक मियाँ को आता देखकर)

मार मार मार-मुसल मुसल मुसल-मान मान मान-सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार-नबी नबी नबी-सबी सबी-ऊँट के अंडे की चरबी का खर। कागज के धप्पे कर सप्पे की सर-मार मार मार।

(मियाँ के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक-घुरुक घुरुक घुरुक-मुरुक मुरुक मुरुक-फुरुक फुरुक फुरुक-याम शाम लीम लाम ढाम-

(मियाँ को पकड़ने को दौड़ता है)

मियाँ-(आप ही आप) यह तो बड़ी हत्या लगी। इससे कैसे पिंड छूटेगा-(प्रकट) दूर दूर।

पागल-दूर दूर दूर-चूर चूर चूर-मियाँ की डाढ़ी में दोजख की हूर-दन तड़ाक छू मियाँ की माई में मोयीं की मूँ-मार मार मार-मियाँ छार खार।

(मियाँ के पास जाकर अट्टहास करके)

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरूत के पेड़ को पसेरी बनाता है-अच्छा अच्छा-नहीं नहीं तैने तो हमको उस दिन मारा था न! हाँ हाँ यही-जाने न पावे। मार मार- (मियाँ की गरदन पकड़कर पटक देता है और छाती पर चढ़कर बैठता है)

रावण का साला दिल्ली का नवाब वेद की किताब-बोल हम राजा कि तू राजा-(मियाँ की डाढ़ी पकड़कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती है। विष्णु शर्मा को पहिचान कर अलग हो जाता है) रावण का साला मियाँ का भेस विष्णु के कान में शर्मा का केस। मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच डाढ़ी जगाके तो मियाँ साँच।

(आँख से इंगित करता है)

मियाँ–(फिर डाढ़ी लगाकर) लाहौलवलाकूअत क्या बेखबर पागल है। इसके घर के लोग इसके लौटने के मुनतजीर हैं यह यहीं पड़ा है।

पागल–पड़ा घड़ा सड़ा-घूम घाम जड़ा-एक एक बात-जात सात धात-नास नास नास-घास छास फास।

मियाँ–क्या सचमुच-दरहकीकत-यह बड़ा भारी पागल है।

पागल–सचमुच नास-राजा अकास-ढाल बे ढाल मियाँ मतवाल (आँख से दूर जाने को। इंगित करता है। मियाँ आगे बढ़ते हैं-यह पीछे धूल फेंकता दौड़ता है)

मार मार मार। बरसा की धार। लेना जाने न पावे। मियाँ का खच्चर (दोनों एकांत में जाकर खड़े होते हैं)

मियाँ–(चारों ओर देखकर) अरे वसंत! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया?

पागल–पंडित जी! कल सबेरी रात ही महाराज ने प्राण त्याग किए (रोता है)

मियाँ–हाय! महाराज हम लोगों को आप किसके भरोसे छोड़ गए! अब हमको इन नीचों का दासत्व भोगना पडैघ्गा! हाय हाय! (चारों ओर देखकर) हाँ, समाचार तो कहो क्या हुआ।

पागल–कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुमको अब भी छोड़ दें। इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था। महाराज ने लोहे के पिंजड़े में से उसके मुँह पर थूक दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट! हमको पिंजड़े में बंद और परवश जानकर ऐसी बात कहता है। क्षत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं। तुझ पर थू और तेरे मत पर थू।

मियाँ–(घबड़ाकर) तब तब।

पागल–इस पर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बंधन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से

लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े के बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस यवनों को मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किए। हाय! (रोता है)

मियाँ–(चारों ओर देखकर) और अब क्या होता है? महाराज का शरीर कहाँ है? तुमने यह सब कैसे जाना?

पागल–सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेष में घूमते हैं। महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल जशन होगा। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। (चारों ओर देखकर) कल ही अवसर है।

मियाँ–तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना।

पागल–हाँ हम तो यहीं हुई हैं। (रोकर) हम अब स्वामी के बिना वह जाही कर क्या करैंगे।

मियाँ–हाय! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्टयवन यथासुख दलन करैंगे। अब स्वाधीनता का सूर्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करैगा। हाय! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है। हाय! धार्मिक वीर पुरुष की यह गति!

(उदास स्वर से गाता है)

(विहाग)

कहाँ करूनानिधि केसव सोए!
जागत नेकु न यदपि बहुत बिधि भारत बासी रोए ।।
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराए।
इतके पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाए ।।
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रह्यौ तुरंतहिं धाई ।।
प्रलय काल सम जौन सुदरसन असुर प्राण संहारी।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी ।।
दुष्ट जवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं।
एक-एक दिन सहस सहस नर सीस काटि भुव पाटैं ।।
ह्वै अनाथ आरत कुल विधवा बिलपहिं दीन दुखारी।
बल करि दासी तिनहिं बनावहिं तुम नहिं लजत खरारी ।।
कहाँ गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।

भक्तवछल करुनानिधि तुम कहँ गयो बहुत बनाई ।।
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई।
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अवहुँ बचाई ।।
(दोनों रोते हैं)
(जवनिका पतन)

नवाँ दृश्य

राजा सूर्यदेव के डेरे
(एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं
और बाहरी डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं)
नी. दे.–(गाती और रोती)
तजी मोहि काके ऊपर नाथ।
मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने को साथ ।।
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकरयौ मेरो हाथ।
सो सब मोह आज तजि दीनो कीनो हाय अनाथ ।। 1 ।।
प्यारे क्यों सुधि हाय बिसारी?
दीन भई बिड़री हम डोलत हा हा होय तुमारी ।।
कबहुँ कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे।
ताही की अब दीन दशा यह कैसे लखत दुलारे ।।
आदर के धन सम जा तन कहँ निज अंकन तुम धार्‌यौ।
ताही कहैं अब परयौ धूर में कैसे नाथ निहार्‌यौ ।। 2 ।।
प्यारे कितै गई सो प्रीति?
निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निवाहन रीति ।।
कह्यो रह्यो जो छिन नहिं तजिहैं मानहु वचन प्रतीति।
सो मोहि जीवन लौं दुख दीनो करी हाय विपरीति ।। 3 ।।
कुमार सोमदेव चार राजपूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं,

सोम–भाइयो, महाराज का समाचार तो आप लोगों ने सुना। अब कहिए क्या कर्त्तव्य है? मेरी तो शोक से मति विकल हो रही है। आप लोगों की जो अनुमति हो किया जाय।

1. रा पू–कुमार आप ऐसी बात कहैंगे कि शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किस का मुँह देखैगा। इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा से न देकर कृपाण धारा से देंगे।

2. रा पू–बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह, तुमने बहुत अच्छा कहा। इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेंगे हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा कर के कहते हैं कि हम पितृऋण से कभी उऋण न होंगे।

3. रा पू – शाबाश! विजयसिंह ऐसा ही होगा। चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परंतु आकल्पांत लोह लेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के हृदय पर लिखी रहैगी। धिक्कार है उस क्षत्रिय धर्म को जो इन चांडालों के मूल नाश में न प्रवृत्त हो।

4. रा पू – शत बार धिक्कार है। सहस्र बार धिक्कार है उसको जो मनसा वाचा कर्मणा किसी तरह इन कापुरुषों से डरै। लक्ष वार कोटि बार कोटि बार धिक्कार है उसको जो इन चांडालों के दमन करने में तृण मात्र भी त्रुटि करै। (बायाँ पैर आगे बढ़ा कर) म्लेच्छ कुल के और उसके पक्षपातियों के सिर पर यह मेरा बायाँ पैर है जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव की भांति निश्चल है। जिस पामर को कुछ भी सामर्थ्य हो हटावै।

सो. दे.–धन्य आर्यवीर पुरूषगण! तुम्हारे सिवा और कौन ऐसी बात कहैगा। तुम्हारी ही भुजा के भरोसे हम लोग राज्य करते हैं। यह तो केवल तुम लोगों का जी देखने को मैंने कहा था। पिता की वीरगति का शोच किस क्षत्रिय को होगा? हाँ जो हम लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार करैं तो निसंदेह दु:ख हो। (तलवार खींच कर) भाइयो, चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन के रक्त से अपने आर्य पितरों को तृप्त करें।

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सो खग खींचि रनरंग जमाओ ।।
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बाँधौ ।।
जौ आरज गन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृह कलहहि अपनी कुल मरजाद विचारैं ।।
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ।।
पदतल इन कहँ दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय।
तनिकहु संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय ।।
आर्य वंश को बधन पुन्य जा अधंम धर्म मै।

गोभक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जास कर्म मैं ।।
तिनको तुरितहिं हतौ मिलैं रन कै घर माहीं।
इन दुष्टन सों पाप किएहुँ पुन्य सदाहीं ।।
चिऊँटिहु पदतल दबे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक।
ये प्रत्तच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक ।।
धिक तिन कहँ जे आर्य होइ जवनन को चाहैं।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु संबंध निबाहैं ।।
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर ।।
मारू बाजे बजैं कहौ धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं ।।
चारन बोलहिं आर्य सुजस बंदी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनबोर सबै बंदूक चलावैं ।।
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ।।
छन महँ नासाहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ।।

सब वीर–भारतवर्ष की जय-प्रार्यकुल की जय-महाराज सूर्यदेव की जय-महारानी नीलदेवी की जय-कुमार सोमदेव की जय-क्षत्रिय वंश की जय।

(आगे आगे कुमार उसके पीछे तलवार खींचकर क्षत्रिय चलते हैं। रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती हैं)

नील–पुत्र की जय हो। क्षत्रिय कुल की जय हो। बेटा एक बात हमारी सुन लो तब युद्ध यात्रा करो।

सोम–(रानी को प्रणाम करके) माता! जो आज्ञा हो।

नी. दे.–कुमार तुम अच्छी तरह जानते हो कि यवन सेना कितनी असंख्य है और यह भी भली भाँति जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए उसी दिन बहुत से राजपूत निराश होकर अपने अपने घर चले गए। इससे मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे एक ही बेर संमुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना अच्छी बात है।

सो. दे.–(कुछ क्रोध कर के) तो क्या हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में लड़कर जीतैं?

सब क्षत्री–क्यों नहीं?

नी. दे.–(शांत भाव से) कुमार तुम्हारी सर्वदा जय है। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं है। किंतु माँ की आज्ञा मानना भी तो तुमको योग्य है।

सब क्षत्री–अवश्य अवश्य।

सोम–(हाथ जोड़कर) माँ, जो आज्ञा होगी वही करूँगा!

नी. दे.–अच्छा सुनो। (पास बुलाकर कान में सब विचार कहती हैं)

सोम–जो आज्ञा।

(एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं)

(पटाक्षेप)

दसवाँ दृश्य

स्थान–अमीर की मजलिस

(अमीर गद्दी पर बैठा है। दो चार सेवक खड़े हैं।
दो चार मुसाहिब बैठे हैं। सामने शराब के पियाले,
सुराही, पानदान, इतरदान रक्खा है।
दो गवैये सामने गा रहे हैं। अमीर नशे में झूमता है)

गवैये–आज यह फतह की दरबार मुबारक होए।
मुल्क यह तुझको शहरयार मुबारक होए ।।
शुक्र सद शुक्र की पकड़ा गया वह दुश्मने दीन।
फतह अब हमको हरेक बार मुबारक होए ।।
हमको दिन रात मुबारक हो फतह ऐणे उरूज।
काफिरों को सदा फिटकार मुबारक होए ।।
फतहे पंजाब से सब हिंद की उम्मीद हुई।
मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए ।।
हिंदू गुमराह हों बेजर हों बनें अपने गुलाम।
हमको ऐशो तरबोतार मुबारक होए ।।

अमीर–आमीं आमीं। वाह वाह वल्लाही खूब गाया। कोई है? इन लोगों को एक एक जोड़ा दुशाला इनआम दो। (मद्यपान)

(एक नौकर आता है)

नौ–खुदावंद निआमत! एक परदेस की गानेवाली बहुत ही अच्छी खेमे के दरवाजे पर हाजिर है। वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए। जो इरशाद हो बजा लाऊँ।

अमीर–जरूर लाओ। कहो साज मिला कर जल्द हाजिर हो।

नौ–जो इरशाद। (जाता है)

अमीर–आज के जशन का हाल सुनकर दूर दूर से नाचने गानेवाले चले आते हैं।

मुसाहिब–बजा इरशाद है, और उनको इनाम भी बहुत ज्यादा मिलता है न क्यों आवैं?

(चार समाजियों के साथ एक गायिका का प्रवेश)

अमीर–आप ही आप, यह तायफा तो बहुत ही खूबसूरत है! प्रगट, तुम्हारा क्या नाम है? (मद्यपान)

गायिका–मेरा नाम चंडिका है। मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आती हूँ।

अमीर–बहुत अच्छी बात है। जल्द गाना शुरू करो। तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है। जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होगा। (मद्यपान)

गायिका–जो हुकुम। (गाती है)

ठुमरी तिताला

हाँ मोसे सेजिया चढ़लि नहिं जाई हो।

पिय बिनु साँपिन सी डसै बिरह रैन ।।

छिन छिन बढ़त बिथा तन सजनी,

कटत न कठिन वियोग की रजनी ।।

बिनु हरि अति अकुलाई हो।

अमीर–वाह वाह क्या कहना है! (मद्यपान) क्यों फिदाहुसैन! कितना अच्छा गाया है।

मुसाहिब–सुबहानअल्लाह! हुजूर क्या कहना है। वल्लाह मेरा तो क्या जिक है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था।

(अमीर अंगूठी उतारकर देना चाहता है)

गायिका–मुझको अभी आपसे बहुत कुछ लेना है। अभी आप इसको अपने पास रखें आखीर में एक साथ मैं सब ले लूँगी।

अमीर–(मद्यपान करके) अच्छा! कुछ परवाह नहीं। हाँ, इसी धुन की एक और हो मगर उसमें फुरकत का मजमून न हो क्योंकि आज खुशी का दिन है।

गायिका–जो हुकुम (उसी चाल में गाती है)

जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो।

काहे चलो छाँह से छाँह मिलाए हो ।।

जिय को मरम तुम साफ कहत किन काहे फिरत मँडराए हो।

एहो हरि देखि यह नयो मेरो जीवन हम जानी तुम जो लुभाए हो ।।

अमीर–(मद्यपान कर के अत्यंत रीझने का नाट्य करता है) कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था। दरहकीकत हिंदोस्तान इल्म का खजाना है। वल्लाह मैं बहुत ही खुश हुआ।

मुसाहिब गण–वल्लाह, (बजा इरशाद बेशक इत्यादि सिर और दाढ़ी हिलाकर कहते हैं)

अमीर–तुम शराब नहीं पीतीं?

गायिका–नहीं हुजूर।

अमीर–तो आज हमारी खातिर से पीओ।

गायिका–अब तो आपके यहाँ आई ही हूँ। ऐसी जल्दी क्या है। जो जो हुजूर कहैंगे सब करूँगी।

अमीर–अच्छा कुछ परवाह नहीं। (मद्यपान) थोड़ा सा और आगे बढ़ आओ।

(गायिका आगे बढ़ कर बैठती है)

अमीर–(खूब घूरकर स्वागत) हाय हाय! इसको देखकर मेरा दिल बिलकुल हाथ से जाता रहा। जिस तरह हो आज ही इसको काबू में लाना जरूर है। (प्रगट) वल्लाह, तुम्हारे गाने ने मुझको बेअख्तियार कर दिया है। एक चीज और गाओ इसी धुन की। (मद्यपान)

गायिका–जो हुकुम। (गाती है)

हाँ गरवा लगावै गिरिधारी हो, देखो सखी लाज सरम जग की,

छोड़ि चट निपट निलज मुख चूमै बारी बारी।

अति मदमाती हरि कछु न गिनत छैल बरजि रही मैं होई होई बलिहारी।

अब कहाँ जाऊँ कहा करूँ लाज की मैं मारी।

अमीर–(मद्यपान करके उन्मत्त की भाँति) वाह! क्या कहना है। (गिलास हाथ में उठाकर) एक गिलास तो अब तुझको जरूर ही पीना होगा। लो तुमको मेरी कसम, वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।

गायिका–हुजूर मैंने आज तक शराब नहीं पी है। मैं जो पीऊँगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊँगी।

अमीर–कुछ परवाह नहीं, पीओ।

गायिका–हाथ जोड़कर, हुजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यों अपना ईमान छोड़ूँ?

अमीर–नहीं नहीं, तुम आज से हमारी नौकर हुईं, जो तुम चाहोगी तुमको मिलैगा। अच्छा हमारे पास आओ हम तुमको अपने हाथ से शराब पिलावैंगे।

(गायिका अमीर के अति निकट बैठती है)

अमीर–लो जान साहब!

(पियाला उठाकर अमीर जिस समय गायिका के पास ले जाता है उस समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों समाजी बाजा फेंककर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं)।

नी. दे.–ले चांडाल पापी! मुझको जान साहब कहने का फल ले, महाराज के बध का बदला ले। मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चांडाल का अपने हाथ से बध करूँ। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका सो इच्छा पूर्ण हुई। (और आघात) अब मैं सुखपूर्वक सती हूँगी

अमीर–(मृतावस्था में) दगा-अल्लाह चंडिका-

(रानी नीलदेवी ताली बजाती है (तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए, कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं। मुसलमानों को मारते और बाँधते हैं। क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय, आर्यकुल की जय, क्षत्रियवंश की जय, महाराज सूर्यदेव की जय, महारानी नीलदेवी की जय, कुमार सोमदेव की जय इत्यादि शब्द करते हैं)।

अंधेर नगरी चौपट्ट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रन्थ बनने का कारण

बनारस में बंगालियों और हिन्दुस्तानियों ने मिलकर एक छोटा सा नाटक समाज दशाश्वमेध घाट पर नियत किया है, जिसका नाम हिंदू नैशनल थिएटर है। दक्षिण में पारसी और महाराष्ट्र नाटक वाले प्रायः अन्धेर नगरी का प्रहसन खेला करते हैं, किन्तु उन लोगों की भाषा और प्रक्रिया सब असंबद्ध होती है। ऐसा ही इन थिएटर वालों ने भी खेलना चाहा था और अपने परम सहायक भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से अपना आशय प्रकट किया। बाबू साहब ने यह सोचकर कि बिना किसी काव्य कल्पना के व बिना कोई उत्तम शिक्षा

निकले जो नाटक खेला ही गया तो इसका फल क्या, इस कथा को काव्य में बाँध दिया। यह प्रहसन पूर्वोक्त बाबू साहब ने उस नाटक के पात्रों के अवस्थानुसार एक ही दिन में लिख दिया है। आशा है कि परिहासप्रिय रसिक जन इस से परितुष्ट होंगे। इति।

श्री रामदीन सिंह

समर्पण

मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए ।।
जे स्वारथ रत धूर्त हंस से काक-चरित-रत।
ते औरन हति बंचि प्रभुहि नित होहिं समुन्नत ।।
जदपि लोक की रीति यही पै अन्त धम्म जय।
जौ नाहीं यह लोक तदापि छलियन अति जम भय ।।
नरसरीर में रत्न वही जो परदुख साथी।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मंडुक अरु भाथी ।।
तासों अब लौं करो, करो सो, पै अब जागिय।
गो श्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय ।।
साँच नाम निज करिय कपट तजि अन्त बनाइय।
नृप तारक हरि पद साँच बड़ाई पाइय ।।

ग्रन्थकार

छेदश्चन्दनचूतचंपकवने रक्षा करीरद्रुमे
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले काकेषुलीलारतिः
मातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूरकार्पासियो–
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः
अंधेर नगरी चौपट्ट राजा
टके सेर भाजी टके सेर खाजा

प्रथम दृश्य

(वाह्य प्रान्त)
(महन्त जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)
सब–राम भजो राम भजो राम भजो भाई।

राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई ।।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु
सूरदास भए कबिकुलराई।
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसी दास भए भजि रघुराई ।।

महन्त–बच्चा नारायण दास! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखलाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा उच्छा मिलै तो ठाकुर जी को भोग लगै। और क्या।

नारायण दास–गुरु जी महाराज! नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो सो, पर भिक्षा सुन्दर मिलै तो बड़ा आनन्द होय।

महन्त–बच्चा गोवरधन दास! तू पश्चिम की ओर से जा और नारायण दास पूरब की ओर जायगा। देख, जो कुछ सीधा सामग्री मिलै तो श्री शालग्राम जी का बालभोग सिद्ध हो।

गोवरधन दास–गुरु जी! मैं बहुत सी भिच्छा लाता हूँ। यहाँ लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए।

महंत–बच्चा बहुत लोभ मत करना। देखना, हाँ। –
लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान ।।
(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(बाजार)

कबाबवाला–कबाब गरमागरम मसालेदार-चौरासी मसाला बहत्तर आँच का-कबाब गरमागरम मसालेदार-खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै। कबाब लो, कबाब का ढेर-बेचा टके सेर।

घासीराम–चना जोर गरम।
चना बनावैं घासी राम। जिनकी झोली में दूकान।।
चना चुरमुर-चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै।।
चना खावैं तोकी मैना। बोलैं अच्छा बना चबैना।।

चना खाएँ गफूरन, मुन्ना। बोलैं और नहिं कुछ सुन्ना।।
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली-ढाली।।
चना खाते मियाँ जुलाहे। दाढ़ी हिलती गाहे-बगाहे।।
चना हाकिम सब खा जाते। सब पर दूना टैक्स लगाते।।
चना जोर गरम।।
नरंगीवाली—नरंगी ले नरंगी-
सिलहट की नरंगी,
बुटबल की नरंगी, रामबाग की नरंगी,
आनन्दबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी।
मैं तो पिय के रंग न रंगी।
मैं तो भूली लेकर संगी।
नरंगी ले नरंगी।
कैवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा संगतरा।
दोनों हाथों लो-नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे।
नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी।

हलवाई—जलेबियां गरमा गरम। ले सेब इमरती लड्डू गुलाबजामुन खुरमा बुंदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप। हलुआ हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदार कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चभाका। घी में गरक चीनी में तरातर चासनी में चभाचभ। ले भूरे का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय। रेबडी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम हैं भाई। जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुजड़िन—ले धनिया मेथी सोआ पालक चौराई बथुआ करेमूँ नोनियाँ कुलफा कसारी चना सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैगन लौआ कोहड़ा आलू अरूई बण्डा नेनुआँ सूरन रामतरोई तोरई मुरई ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूद निबुहा मटर होरहा। जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।

मुगल—बादाम पिस्ते अखरोट अनार विहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबोखारा चिलगोजा सेब नाशपाती बिही सरदा अंगूर का पिटारी। आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दाँत खट्टा ओ गया। नाहक को रुपया

खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक लक हमारे यहाँ का आदमी बुंबक बुंबक लो सब मेवा टके सेर।

पाचकवाला–चूरन अलमबेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाता 'याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार, जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोई खाए, मुझको छोड़ कहीं नहि जाए।।
हिंदू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिंद में आया, इसका धन-बल सभी घटाया।।
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा, कीन्हा दाँत सभी का खट्टा।।
चूरन चला डाल की मंडी, इसको खाएँगी सब रंडी।।
चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटकवाले खाते, उसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खाएँ एडिटर जात, जिनके पेट पचौ नहीं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पुलिसवाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।।

जातवाला–(ब्राह्मण)। -जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राहाण से धोबी हो जाँय और धोबी को ब्राह्मण कर दें टके के वास्ते जैसी कही वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचौं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानै, बेचौं, टके वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद धर्म कुल मरजादा सचाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।

बनिया–आटा- दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर।

(बाबा जी का चेला गोबर्धनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन सुन कर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है।)

गोवरधन दास–क्यों भाई बणिये, आटा कितणे सेर?

बनियां–टके सेर।

गोवरधन दास–औ चावल?

बनियां–टके सेर।

गोवरधन दास–औ चीनी?

बनियां–टके सेर।

गोवरधन दास–औ घी?

बनियां–टके सेर।

गोवरधन दास–सब टके सेर। सचमुच।

बनियां–हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूंगा।

गोवरधन दास–(कुंजड़िन के पास जाकर) क्यों भाई, भाजी क्या भाव?

कुंजड़िन–बाबा जी, टके सेर। निबुआ मुरई धनियां मिरचा साग सब टके सेर।

गोवरधन दास–सब भाजी टके सेर। वाह वाह! बड़ा आनंद है। यहाँ सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई? मिठाई कितणे सेर?

हलवाई–बाबा जी! लडुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सरे।

गोवरधन दास–वाह! वाह!! बड़ा आनन्द है? क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई–हां बाबा जी, सचमुच सब टके सेर? इस नगरी की चाल ही यही है। यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है।

गोवरधन दास–क्यों बच्चा! इस नगर का नाम क्या है?

हलवाई–अंधेरनगरी।

गोवरधन दास–और राजा का क्या नाम है?

हलवाई–चौपट राजा।

गोवरधन दास–वाह! वाह! अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा (यही गाता है और आनन्द से बिगुल बजाता है)।

हलवाई–तो बाबा जी, कुछ लेना देना हो तो लो दो।

गोवरधन दास–बच्चा, भिक्षा माँग कर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु चेले सब आनन्दपूर्वक इतने में छक जायेंगे।

(हलवाई मिठाई तौलता है–बाबा जी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेर नगरी गाते हुए जाते हैं।)

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

(स्थान जंगल)

(महन्त जी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो इत्यादि गीत गाते हुए आते हैं और एक ओर से गोवर्धनदास अन्धेरनगरी गाते हुए आते हैं')

महन्त–बच्चा गोवर्धन दास! कह क्या भिक्षा लाया? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

गोवरधन दास–बाबा जी महाराज! बड़े माल लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई है।

महन्त–देखूँ बच्चा! (मिठाई की झोली अपने सामने रख कर खोल कर देखता है) वाह! वाह! बच्चा! इतनी मिठाई कहाँ से लाया? किस धर्मात्मा से भेंट हुई?

गोवरधन दास–गुरूजी महाराज! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है।

महन्त–बच्चा! नारायण दास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा, वह कौन सी नगरी है और इसका कौन सा राजा है, जहां टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा है?

गोवरधन दास–अन्धेरनगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

महन्त–तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो।

दोहा–सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में कबहुँ न कीजै बास ।।
कोकिला बायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेकु ।।
बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइये, प्रान दीजिए रोय ।।

सो बच्चा चलो यहाँ से। ऐसी अन्धेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिलै तो किस काम की? यहाँ एक छन नहीं रहना।

गोवरधन दास–गुरु जी, ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं हैं। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़ कर नहीं

जाऊँगा। और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरंच बाजे बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यही रहूँगा।

महन्त–देख बच्चा, पीछे पछतायगा।

गोवरधन दास–आपकी कृपा से कोई दुःख न होगा, मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए।

महन्त–मैं तो इस नगर में अब एक क्षण भर नहीं रहूंगा। देख मेरी बात मान नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

गोवरधन दास–प्रणाम गुरु जी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूँगा। मैं तो फिर भी कहता हूं कि आप भी यहीं रहिए।

महन्त जी नारायण दास के साथ जाते हैं, गोवर्धन दास बैठकर मिठाई खाता है।,

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(राजसभा)

(राजा, मन्त्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

1 सेवक–(चिल्लाकर) पान खाइए महाराज।

राजा–(पीनक से चौंक घबड़ाकर उठता है) क्या? सुपनखा आई ए महाराज। (भागता है)।

मन्त्री–(राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा–दुष्ट लुच्चा पाजी! नाहक हमको डरा दिया। मन्त्री इसको सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री–महाराज! इसका क्या दोष है? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा–अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगैं।

मन्त्री–पर महाराज, आप पान खाइए सुन कर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा–(घबड़ाकर) फिर वही नाम? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मन्त्री बेर बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! नौकर! शराब।

2 नौकर–(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझल कर देता है।) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा–(मुँह बनाकर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में-दुहाई है दुहाई-का शब्द होता है।)

कौन चिल्लाता है-पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फरियादी को पकड़ लाते हैं)

फरियादी–दोहाई है महाराज दोहाई है। हमारा न्याव होय।

राजा–चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा। बोलो क्या हुआ?

फरियादी–महाराजा कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज न्याय हो।

राजा–(नौकर से) कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओ।

मन्त्री–महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा–अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मन्त्री–महाराज! दीवार ईंट चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता।

राजा–अच्छा कल्लू बनिये को पकड़ लाओ।

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिए! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई?

मन्त्री–बरकी नहीं महाराज, बकरी।

राजा–हाँ हाँ, बकरी क्यों मर गई-बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ।

कल्लू–महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाया कि गिर पड़ी।

राजा–अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़ लाते हैं) क्यों बे कारीगर! इसकी बकरी किस तरह मर गई?

कारीगर–महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा–अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ।

(कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर सुपाड़ी चूनेवाले! इसकी कुबरी कैसे मर गई?

चूनेवाला–महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा–अच्छा चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है भिश्ती, भिश्ती लाया जाता है) क्यों वे भिश्ती! गंगा जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।

भिश्ती–महाराज! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दिया कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा–अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो।

(लोग भिश्ती को निकालते हैं और कस्साई को लाते हैं)

क्यौं बे कस्साई मशक ऐसी क्यौं बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई?

कस्साई–महाराज! गड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेंड़ मेरे हाथ बेंची की उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा–अच्छा कस्साई को निकालो, गड़ेरिये को लाओ।

(कस्साई निकाला जाता है गंड़ेरिया आता है)

क्यों बे ऊखपौड़े के गंडेरिया। ऐसी बड़ी भेड़ क्यौं बेचा कि बकरी मर गई?

गड़ेरिया–महाराज! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उस के देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा–अच्छा, इस को निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।

(गंड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है) क्यौं बे कोतवाल! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिये ने घबड़ा कर बड़ी भेड़ बेचा, जिस से बकरी गिर कर कल्लू बनियाँ दब गया?

कोतवाल–महाराज महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री–(आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी क्यौं निकाली?

राजा–हाँ हाँ, यह नहीं, तुम ने ऐसे धूम से सवारी कयों निकाली कि उस की बकरी दबी।

कोतवाल–महाराज महाराज

राजा–कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़ कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़ कर राजा जाते हैं)

(पटाक्षेप)

पांचवां दृश्य

(अरण्य)

(गोवर्धन दास गाते हुए आते हैं)

(राग काफी)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीच ऊँच सब एकहि ऐसे। जैसे भडुए पंडित तैसे।।
कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबैं एक से लोग लुगाई।।
जात पाँत पूछै नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि को होई।।
वेश्या जोरू एक समाना। बकरी गऊ एक करि जाना।।
सांचे मारे मारे डाल। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं।।
प्रगट सभ्य अन्तर छलहारी। सोइ राजसभा बलभारी ।।
सांच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहुविधि पदवी पावै ।।
छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागे ।।
भीतर होइ मलिन की कारो। चहिये बाहर रंग चटकारो ।।
धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करै सो न्याव सदाई ।।
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले अरु प्यादे ।।
अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत बिदेसा ।।
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई। मानहुँ नृपति बिधर्मी कोई ।।
ऊँच नीच सब एकहि सारा। मानहुँ ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा ।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा ।।

गुरु जी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है। पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से राम-भजन करना।

(मिठाई खाता है)

(चार प्यादे चार ओर से आ कर उस को पकड़ लेते हैं)

1. प्यादा–चल बे चल, बहुत मिठाई खा कर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

2. प्यादा–बाबा जी चलिए, नमोनारायण कीजिए।

गोवरधन दास–(घबड़ा कर) हैं! यह आफत कहाँ से आई! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हौ।

1. प्यादा–आप ने बिगाड़ा है या बनाया है इस से क्या मतलब, अब चलिए। फाँसी चढ़िए।

गोवरधन दास–फाँसी। अरे बाप रे बाप फाँसी!! मैंने किस की जमा लूटी है कि मुझ को फाँसी! मैंने किस के प्राण मारे कि मुझ को फाँसी!

2. प्यादा–आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फाँसी होती है।

गोवरधन दास–मोटे होने से फाँसी? यह कहां का न्याय है! अरे, हंसी फकीरों से नहीं करनी होती।

3. प्यादा–जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हंसी है कि सच। सीधी राह से चलते हौ कि घसीट कर ले चलें?

गोवरधन दास–अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण मारते हौ? भगवान के यहाँ क्या जवाब दोगे?

4. प्यादा–भगवान् को जवाब राजा देगा। हम को क्या मतलब। हम तो हुक्मी बन्दे हैं।

गोवरधन दास–तब भी बाबा बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फाँसी देते हौ?

5. प्यादा–बात है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुकुम हुआ था। जब फाँसी देने को उस को ले गए, तो फाँसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़ कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी की सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याव न होगा। इसी वास्ते तुम को ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।

गोवरधन दास–तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं!

6. प्यादा–इस में दो बात है-एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ैं तो वह न जानैं क्या बात बनावै कि हमी लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधु महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इस से तुम्हीं को फाँसी देंगे।

गोवरधन दास–दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ! अरे यहाँ बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरु जी महाराज का कहा मैंने न माना उस का फल मुझ को भोगना पड़ा। गुरु जी कहां हौ! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ गुरु जी गुरु जी-

(गोबर्धन दास चिल्लाता है,

प्यादे लोग उस को पकड़ कर ले जाते हैं)

(पटाक्षेप)

छठा दृश्य

(स्थान 'मशान')

(गोबर्धन दास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गोवरधन दास–हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फाँसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम विचारो! अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय! (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है)

1 सिपाही–अबे, चुप रह-राजा का हुकुम भला नहीं टल सकता है? यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले-बेफाइदा क्यों शोर करता है? चुप रह-

गोवरधन दास–हाय! मैं ने गुरु जी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरु जी ने कहा था कि ऐसे-नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेरनगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो फकीर को बचावै। गुरु जी! कहाँ हौ? बचाओ-गुरुजी-गुरुजी-(रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं)

(गुरु जी और नारायण दास आरोह)

गुरु जी–अरे बच्चा गोबर्धन दास! तेरी यह क्या दशा है?

गोवरधन दास–(गुरु को हाथ जोड़कर) गुरु जी! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इस के लिये मुझे फाँसी देते हैं, गुरु जी बचाओ।

गुरु जी–अरे बच्चा! मैंने तो पहिले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तैंने मेरा कहना नहीं सुना।

गोवरधन दास–मैंने आप का कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आप के सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करै। मैं आप ही का हूँ, आप के सिवा और कोई नहीं (पैर पकड़ कर रोता है)।

महन्त–कोई चिन्ता नहीं, नारायण सब समर्थ है। (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझ को अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

सिपाही–नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिए।

(सिपाही हट जाते हैं। गुरु जी चेले के कान में कुछ समझाते हैं)

गोवरधन दास–(प्रगट) तब तो गुरु जी हम अभी फाँसी चढ़ेंगे।

महन्त–नहीं बच्चा, मुझको चढ़ने दे।

गोवरधन दास–नहीं गुरु जी, हम फाँसी पड़ेंगे।

महन्त–नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे।

गोवरधन दास–स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या? आप तो सिद्ध हो, आपको गति अगति से क्या? मैं फाँसी चढ़ूँगा।

(इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं-सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

1 सिपाही–भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ में नहीं पड़ता।

2 सिपाही–हम भी नहीं समझ सकते हैं कि यह कैसा गबड़ा है।

(राजा, मंत्री कोतवाल आते हैं)

राजा–यह क्या गोलमाल है?

3. सिपाही–महाराज! चेला कहता है मैं फाँसी पड़ूंगा, गुरु कहता है मैं पड़ूंगाय कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है?

राजा–(गुरू से) बाबा जी! बोलो। काहे को आप फाँसी चढ़ते हैं?

महन्त–राजा! इस समय ऐसा साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा।

मंत्री–तब तो हमी फाँसी चढ़ेंगे।

गोवरधन दास–हम हम। हम को तो हुकुम है।

कोतवाल–हम लटकैंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा–चुप रहो, सब लोग, राजा के आछत और कौन बैकुण्ठ जा सकता है। हमको फाँसी चढ़ाओ, जल्दी जल्दी।

महन्त–जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजन समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसे, जैसे चौपटराज।।
(राजा को लोग टिकट पर खड़ा करते हैं)

प्रसिद्ध रचनाएँ/कविताएँ भारतेंदु हरिश्चंद्र

1. गंगा-वर्णन

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इम आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।।
सुभग स्वर्ग-सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।
श्रीहरि-पद-नख-चंद्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भव खण्डन सुर सरबस।।
शिवसिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुण्य-फल।
एरावत-गत गिरिपति-हिम-नग-कण्ठहार कल।।
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन।।

2. यमुना-वर्णन

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहु सुहाये।।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
मनु आतप वारन तीर कौं, सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत ।। 1।।
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति रक निसि आवति।
जल मै मिलिकै नभ अवनी लौं तानि तनावति।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुदात देखि सुन्दर सो सोभा ।।
सो को कबि जो छबि कहि, सकै ता जमुन नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत, छबि इक – सी नभ तीर की ।। 2।।

परत चन्र्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोइ मन भायो।।
मनु हरि दरसन हेत चन्र्द जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ।।
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ।। 3 ।।
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ।।
मनु ससि भरि अनुराग जामुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरनि करत कलोलैं ।।
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती।
कई अवगाहत डोलात कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ।।4।।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटी जात जामुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल ।।
कै कालिन्दी नीर तरंग जितौ उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ।।
कै बहुत रजत चकई चालत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ।।5।।
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ काराणडव उडत कहूँ जल कुक्कुट धावत ।।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रम्रावलि गावत ।।
तट पर नाचत मोर बहु रोर बिधित पच्छी करत।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब धरत ।।6।।

3. ऊधो जो अनेक मन होते

ऊधो जो अनेक मन होते
तो इक श्याम-सुन्दर को देते, इक लै जोग संजोते।
एक सों सब गृह कारज करते, एक सों धरते ध्यान।
एक सों श्याम रंग रंगते, तजि लोक लाज कुल कान।
को जप करै जोग को साधै, को पुनि मूँदे नैन।
हिए एक रस श्याम मनोहर, मोहन कोटिक मैन।

ह्याँ तो हुतो एक ही मन, सो हरि लै गये चुराई।
'हरिचंद' कौउ और खोजि कै, जोग सिखावहु जाई।।

4. परदे में कैद औरत की गुहार

लिखाय नाहीं देत्यो पढ़ाय नाहीं देत्यो।
सैयाँ फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो।।
लहँगा दुपट्टा नीको न लागै।
मेमन का गाउन मँगाय नाहीं देत्यो।
वै गोरिन हम रंग सँवलिया।
नदिया प बँगला छवाय नाहीं देत्यो।।
सरसों का उबटन हम ना लगइबे।
साबुन से देहियाँ मलाय नाहीं देत्यो।।
डोली मियाना प कब लग डोलौं।
घोड़वा प काठी कसाय नाहीं देत्यो।।
कब लग बैठीं काढ़े घुँघटवा।
मेला तमासा जाये नाहीं देत्यो।।
लीक पुरानी कब लग पीटों।
नई रीत-रसम चलाय नाहीं देत्यो।।
गोबर से ना लीपब-पोतब।
चूना से भितिया पोताय नाहीं देत्यो।
खुसलिया छदमी ननकू हन काँ।
विलायत काँ काहे पठाय नाहीं देत्यो।।
धन दौलत के कारन बलमा।
समुंदर में बजरा छोड़ाय नाहीं देत्यो।।
बहुत दिनाँ लग खटिया तोड़िन।
हिंदुन काँ काहे जगाय नाहीं देत्यो।।
दरस बिना जिय तरसत हमरा।
कैसर का काहे देखाय नाहीं देत्यो।।
'हिज्रप्रिया' तोरे पैयाँ परत है।
'पंचा' में एहका छपाय नाहीं देत्यो।।

5. बँसुरिआ मेरे बैर परी

बँसुरिआ मेरे बैर परी।
छिनहूँ रहन देति नहिं घर में, मेरी बुद्धि हरी।

बेनु-बंस की यह प्रभुताई बिधि हर सुमति छरी।
'हरीचंद' मोहन बस कीनो, बिरहिन ताप करी।।

6. सखी री ठाढ़े नंदकिसोर

सखी री ठाढ़े नंदकिसोर।
वृंदाबन में मेहा बरसत, निसि बीती भयो भोर।
नील बसन हरि-तन राजत हैं, पीत स्वामिनी मोर।
'हरीचंद' बलि-बलि ब्रज-नारी, सब ब्रजजन-मनचोर।।

7. हरि-सिर बाँकी बिराजै

हरि-सिर बाँकी बिराजै।
बाँको लाल जमुन तट ठाढ़ो बाँकी मुरली बाजै।
बाँकी चपला चमकि रही नभ बाँको बादल गाजै।
'हरीचंद' राधा जू की छबि लखि रति मति गति भाजै।।

8. धन्य ये मुनि वृन्दाबन बासी

धन्य ये मुनि वृन्दाबन बासी।
दरसन हेतु बिहंगम हवै रहे, मूरति मधुर उपासी।
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै, मिलि बैठत हैं आई।
नैनन मूँदि त्यागि कोलाहल, सुनहिं बेनु धुनि माई।
प्राननाथ के मुख की बानी, करहिं अमृत रस-पान।
'हरिचंद' हमको सौउ दुरलभ, यह बिधि गति की आन।।

9. इन दुखियन को न चैन सपनेहुं मिल्यौ

इन दुखियन को न चैन सपनेहुं मिल्यौ,
तासों सदा व्याकुल बिकट अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचंद जूं' की बीती जानि औध, प्रान
चाहते चले पै ये तो संग ना समायँगी।
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातैं,
तौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय!
मरेहू पै आंखे ये खुली ही रहि जायँगी।

10. बन्दर सभा

आना राजा बन्दर का बीच सभा के,
सभा में दोस्तो बन्दर की आमद आमद है।

गधे औ फूलों के अफसर जी आमद आमद है।
मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना।
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है।
व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुच्ची आँख
व मोटे ओठ मुछन्दर की आमद आमद है ।।
हैं खर्च खर्च तो आमद नहीं खर-मुहरे की
उसी बिचारे नए खर की आमद आमद है ।।1।।
बोले जवानी राजा बन्दर के बीच अहवाल अपने के,
पाजी हूँ में कौम का बन्दर मेरा नाम।
बिन फुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम ।।
सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार ।।
लाओ जहाँ को मेरे जल्दी जाकर ह्याँ।
सिर मूड़ैं गारत करैं मुजरा करैं यहाँ ।।2।।
आना शुतुरमुर्ग परी का बीच सभा में,
आज महफिल में शुतुरमुर्ग परी आती है।
गोया गहमिल से व लैली उतरी आती है ।।
तेल और पानी से पट्टी है सँवारी सिर पर।
मुँह पै मांझा दिये लल्लादो जरी आती है ।।
झूठे पट्ठे की है मुबाफ पड़ी चोटी में।
देखते ही जिसे आंखों में तरी आती है ।।
पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हैगी।
हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है ।।
मार सकते हैं परिन्दे भी नहीं पर जिस तक।
चिड़िया-वाले के यहाँ अब व परी आती है ।।
जाते ही लूट लूँ क्या चीज खसोटूँ क्या शै।
बस इसी फिक्र में यह सोच भरी आती है ।।3।।
गजल जवानी शुतुरमुर्ग परी हसन हाल अपने के,
गाती हूँ मैं औ नाच सदा काम है मेरा।
ऐ लोगो शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा ।।
फन्दे से मेरे कोई निकले नहीं पाता।

इस गुलशने आलम में बिछा दाम है मेरा ।।
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा दूँ।
कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा ।।
पहले जो मिले कोई तो जी उसका लुभाना।
बस कार यही तो सहरो शाम है मेरा ।।
शुरफा व रुजला एक हैं दरबार में मेरे।
कुछ सास नहीं फैज तो इक आम है मेरा ।।
बन जाएँ जुगत् तब तौ उन्हें मूड़ हा लेना।
खली हों तो कर देना धता काम है मेरा ।।
जर मजहबो मिल्लत मेरा बन्दी हूँ मैं जर की।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम है मेरा ।।4।।
(छन्द जबानी शुतुरमुर्ग परी)
राजा बन्दर देस मैं रहें इलाही शाद।
जो मुझ सी नाचीज को किया सभा में याद ।।
किया सभा में याद मुझे राजा ने आज।
दौलत माल खजाने की मैं हूँ मुँहताज ।।
रूपया मिलना चाहिये तख्त न मुझको ताज।
जग में बात उस्ताद की बनी रहे महराज ।।5।।
ठुमरी जबानी शुतुरमुर्ग परी के,
आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर।
लेना है मुझे इनआम में जर ।।
दुनिया में है जो कुछ सब जर है।
बिन जर के आदमी बन्दर है ।।
बन्दर जर हो तो इन्दर है।
जर ही के लिये कसबो हुनर है ।।6।।
गजल शुतुरमुर्ग परी की बहार के मौसिम में,
आमद से बसंतों के है गुलजार बसंती।
है फर्श बसंती दरो-दीवार बसंती ।।
आँखों में हिमाकत का कँवल जब से खिला है।
आते हैं नजर कूचओ बाजार बसंती ।।
अफयूँ मदक चरस के व चंडू के बदौलत।

यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती ।।
दे जाम मये गुल के मये जाफरान के।
दो चार गुलाबी हां तो दो चार बसंती ।।
तहवील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो।
जोड़ा हो परी जान का तैयार बसंती ।।7।।
होली जबानी शुतुरमुर्ग परी के,
पा लागों कर जोरी भली कीनी तुम होरी।
फाग खेलि बहुरंग उड़ायो ओर धूर भरि झोरी ।।
धूँधर करो भली हिलि मिलि कै अधाधुंध मचोरी।
न सूझत कहु चहुँ ओरी।
बने दीवारी के बबुआ पर लाइ भली विधि होरी।
लगी सलोनो हाथ चरहु अब दसमी चैन करो री ।।
सबै तेहवार भयो री ।।8।।

11. दशरथ विलाप

कहाँ हौ ऐ हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे ।।
बुढ़ापे में ये दु:ख भी देखना था।
इसी के देखने को मैं बचा था ।।
छिपाई है कहाँ सुन्दर वो मूरत।
दिखा दो साँवली-सी मुझको सूरत ।।
छिपे हो कौन-से परदे में बेटा।
निकल आवो कि अब मरता हु बुड्ढा ।।
बुढ़ापे पर दया जो मेरे करते।
तो बन की ओर क्यों तुम पर धरते ।।
किधर वह बन है जिसमें राम प्यारा।
अजुध्या छोड़कर सूना सिधारा ।।
गई संग में जनक की जो लली है
इसी में मुझको और बेकली है ।।
कहेंगे क्या जनक यह हाल सुनकर।
कहाँ सीता कहाँ वह बन भयंकर ।।
गया लछमन भी उसके साथ-ही-साथ।

तड़पता रह गया मैं मलते ही हाथ ।।
मेरी आँखों की पुतली कहाँ है।
बुढ़ापे की मेरी लकड़ी कहाँ है ।।
कहाँ ढूँढ़ौं मुझे कोई बता दो।
मेरे बच्चो को बस मुझसे मिला दो ।।
लगी है आग छाती में हमारे।
बुझाओ कोई उनका हाल कह के ।।
मुझे सूना दिखाता है जमाना।
कहीं भी अब नहीं मेरा ठिकाना ।।
अँधेरा हो गया घर हाय मेरा।
हुआ क्या मेरे हाथों का खिलौना ।।
मेरा धन लूटकर के कौन भागा।
भरे घर को मेरे किसने उजाड़ा ।।
हमारा बोलता तोता कहाँ है।
अरे वह राम-सा बेटा कहाँ है ।।
कमर टूटी, न बस अब उठ सकेंगे।
अरे बिन राम के रो-रो मरेंगे ।।
कोई कुछ हाल तो आकर के कहता।
है किस बन में मेरा प्यारा कलेजा ।।
हवा और धूप में कुम्हका के थककर।
कहीं साये में बैठे होंगे रघुवर ।।
जो डरती देखकर मट्टी का चीता।
वो वन-वन फिर रही है आज सीता ।।
कभी उतरी न सेजों से जमीं पर।
वो फिरती है पियोदे आज दर-दर ।।
न निकली जान अब तक बेहया हूँ।
भला मैं राम-बिन क्यों जी रहा हूँ ।।
मेरा है वज्र का लोगो कलेजा।
कि इस दुःख पर नहीं अब भी य फटता ।।
मेरे जीने का दिन बस हाय बीता।
कहाँ हैं राम लछमन और सीता ।।

कहीं मुखड़ा तो दिखला जायँ प्यारे।
न रह जाये हविस जी में हमारे ।।
कहाँ हो राम मेरे राम-ए-राम।
मेरे प्यारे मेरे बच्चे मेरे श्याम ।।
मेरे जीवन मेरे सरबस मेरे प्रान।
हुए क्या हाय मेरे राम भगवान ।।
कहाँ हो राम हा प्रानों के प्यारे।
यह कह दशरथ जी सुरपुर सिधारे ।।

12. बसंत होली

जोर भयो तन काम को आयो प्रकट बसंत।
बाढ़यो तन में अति बिरह भो सब सुख को अंत ।।1।।
चैन मिटायो नारि को मैन सैन निज साज।
याद परी सुख देन की रैन कठिन भई आज ।।2।।
परम सुहावन से भए सबै बिरिछ बन बाग।
तृबिध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग ।।3।।
कोहल अरु पपिहा गगन रटि रटि खायो प्रान।
सोवन निसि नहिं देत है तलपत होत बिहान ।।4।।
है न सरन तृभुवन कहूँ कहु बिरहिन कित जाय।
साथी दुख को जगत में कोऊ नहीं लखाय ।।5।।
रखे पथिक तुम कित विलम बेग आइ सुख देहु।
हम तुम-बिन ब्याकुल भई धाइ भुवन भरि लेहु ।।6।।
मारत मैन मरोरि कै दाहत हैं रितुराज।
रहि न सकत बिन मिलौ कित गहरत बिन काज ।।7।।
गमन कियो मोहि छोड़ि कै प्रान-पियारे हाय।
दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय ।।8।।
हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय।
मूरति मोहन मैन के दूर बसे कित जाय ।।9।।
रहत सदा रोवत परी फिर फिर लेत उसास।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास ।।10।।
चूमि चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र।
तिनहीं को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र ।।11।।

यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए बिष-बुझे बान।
चौदिसि टेसू फूलि कै दाहत हैं मम प्रान ।।12।।
परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात।
टप टप टपकत नैन जल मुरि मुरि पछरा खात ।।13।।
निसि कारी साँपिन भई डसत उलटि फिरि जात।
पटकि पटकि पाटी करन रोइ रोइ अकुलात ।।14।।
टरै न छाती सौं दुसह दुख नहिं आयौ कंत।
गमन कियो केहि देस कों बीती हाय बसंत ।।15।।
वारों तन मन आपुनों दुहुँ कर लेहुँ बलाय।
रति-रंजन 'हरिचंद' पिय जो मोहि देहु मिलाय ।।16।।

13. उर्दू का स्यापा

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।
बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय।
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचौं हाय हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय। दुनिया उल्टी हाय हाय।
रोजी बिल्टी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।
किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।
दाँत पीसी हाय हाय। एडिटर पोसी हाय हाय।
बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।
चरब-जुबानी हाय हाय। शोख बयानि हाय हाय।
फिर नहीं आनी हाय हाय।

14. अब और प्रेम के फंद परे

अब और प्रेम के फंद परे
हमें पूछत- कौन, कहाँ तू रहै।
अहै मेरेह भाग की बात अहो तुम
सों न कछु 'हरिचन्द' कहै।
यह कौन सी रीति अहै हरिजू तेहि
भारत हौ तुमको जो चहै।
चह भूलि गयो जो कही तुमने हम
तेरे अहै तू हमारी अहै।

15. होली

कैसी होरी खिलाई।
आग तन-मन में लगाई।।
पानी की बूँदी से पिंड प्रकट कियो सुंदर रूप बनाई।
पेट अधम के कारन मोहन घर-घर नाच नचाई।।
तबौ नहिं हबस बुझाई।
भूँजी भाँग नहीं घर भीतर, का पहिनी का खाई।
टिकस पिया मोरी लाज का रखल्यो, ऐसे बनो न कसाई।।
तुम्हें कैसर दोहाई।
कर जोरत हौं बिनती करत हूँ छाँड़ो टिकस कन्हाई।
आन लगी ऐसे फाग के ऊपर भूखन जान गँवाई।।
तुन्हें कछु लाज न आई।

16. चूरन का लटका

चूरन अलमबेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार, जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोई खाए, मुझको छोड़ कहीं नहि जाए।।
हिंदू चूरन इसका नाम, विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिंद में आया, इसका धन-बल सभी घटाया।।
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा, कीन्हा दाँत सभी का खट्टा।।
चूरन चला डाल की मंडी, इसको खाएँगी सब रंडी।।
चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटकवाले खाते, उसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खाएँ एडिटर जात, जिनके पेट पचौ नहीं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पुलिसवाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।।

18. हरी हुई सब भूमि

बरषा सिर पर आ गई हरी हुई सब भूमि
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमण-गण झूमि

करके याद कुटुंब की फिरे विदेशी लोग
बिछड़े प्रीतमवालियों के सिर पर छाया सोग
खोल-खोल छाता चले लोग सड़क के बीच
कीचड़ में जूते फँसे जैसे अघ में नीच

19. अंग्रेज स्तोत्र

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
स्टारार्थी लभते स्टारम् मोक्षार्थी लभते गतिं ।।
एक कालं द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुत्पठेत।
भव पाश विनिर्मुक्तः अंग्रेज लोकं संगच्छति ।।
(इससे विद्यार्थी को विद्या, धन चाहने वाले को धन, स्टार-खिताब-पदवी चाहने वाले को स्टार और मोक्ष की कामना करने वाले को परमगति की प्राप्ति होती है। जो प्राणी रोजाना, नियम से, तीनों समय इसका- (अंग्रेज - स्तोत्र का) पाठ करता है वह अंग्रेज लोक को गमन करने का पुण्य लाभ अर्जित करने का अधिकारी होता है।)

20. अथ मदिरास्तवराज

निन्दतो बहुभिलोकैमुखस्वासपरागमुखैः।
बलःहीना क्रियाहीनो मूत्रकृतलुण्ठतेक्षितौ ।।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावल्लुंठतिभूतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ।।
(भले ही कुछ लोग इसकी -मदिरा की- निन्दा करते हों किन्तु बहुतों के मुख से निकलने वाली सांस को यह सुवासित करने का कार्य करती है। यह अलग बात है कि यह बल और क्रिया से हीन कर मूत्र से सिंचित धरा पर क्यों न धराशायी कर दे फिर भी मदिरा का सेवनकर्ता पीता है, पीता है, बार-बार पीता है और तब तक पीता है, जब तक कि धरती माता का चुम्बन न करने लगे। वह फिर उठता है, फिर पीता है और तब तक

पीता जाता है जब तक कि उसकी नर देह
को मुक्ति नहीं मिल जाती।)

21. मातृभाषा प्रेम-दोहे

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।
उन्नति पूरी है तबहिं जब घर उन्नति होय
निज शरीर उन्नति किये, रहत मूढ़ सब कोय।
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुं न ह्वैहैं सोय
लाख उपाय अनेक यों भले करे किन कोय।
इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग।
और एक अति लाभ यह, या में प्रगट लखात
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात।
तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय
यह गुन भाषा और महं, कबहूं नाहीं होय।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।
भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात।
सब मिल तासों छांड़ि कै, दूजे और उपाय
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय।

22. पद

1.

हमहु सब जानति लोक की चालनि, क्यौं इतनौ बतरावति हौ।
हित जामै हमारो बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ।।
'हरिचंद जु' जामै न लाभ कछु, हमै बातनि क्यों बहरावति हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावति हौ।।

2.

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग, ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ, इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।।

ये ब्रजबाला सबै इक सी, 'हरिचंद जु' मण्डलि ही बिगरी है।
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये, कूप ही में इहाँ भाँग परी है।।

3.

मन की कासों पीर सुनाऊं।
बकनो बृथा, और पत खोनी, सबै चबाई गाऊं।।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै, धरिहै उलटो नाऊं।।
यह तौ जो जानै सोइ जानै, क्यों करि प्रगट जनाऊं।।
रोम-रोम प्रति नैन स्रवन मन, केहिं धुनि रूप लखाऊं।
बिना सुजान सिरोमणि री, किहिं हियरो काढि दिखाऊं।।
मरिमनि सखिन बियोग दुखिन क्यों, कहि निज दसा रोवाऊं।
'हरीचंद' पिय मिलैं तो पग परि, गहि पटुका समझाऊं'।।

4.

हम सब जानति लोक की चालनि, क्यौं इतनौ बतरावति हौ
हित जामैं हमारो बनै सो करौ, सखियां तुम मेरी कहावति हौ।।
'हरिचंद जू जामै न लाभ कछू, हमैं बातनि क्यों बहरावति हौ'।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों का समुझावति हौ।।
क्यों इन कोमल गोल कपोलन, देखि गुलाब को फूल लजायो।।
त्यों 'हरिचंद जू पंकज के दल, सो सुकुमार सबै अंग भायो'।।

5.

अमृत से जुग ओठ लसैं, नव पल्लव सो कर क्यों है सुहायो।
पाहप सो मन हो तौ सबै अंग, कोमल क्यों करतार बनायो।।
आजु लौं जो न मिले तौ कहा, हम तो तुम्हरे सब भांति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं, सबै फल आपुने भाग को पावैं।।
जो 'हरिचनद' भई सो भई, अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति, बिदा के समै सब कंठ लगावैं।।

6.

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी !
इन चोरन मेरो सरबस लूट्यौ मन लीनो जोरा जोरी !
छोड़ि देई कि बंद चोलिया, पकरैं चोर हम अपनो री !
'हरीचन्द' इन दोउन मेरी, नाहक कीनी चितचोरी !
तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी !!

23. वह अपनी नाथ दयालुता

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
व जो गीध था गनिका व थी व जो व्याध था व मलाह था
इन्हें तुमने ऊंचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो।
जिन बानरों में न रूप था न तो गुन हि था न तो जात थी
उन्हें भाइयों का सा मानना तुम्हें याद हो कि न याद हो।
खाना भील के वे जूठे फल, कहीं साग दास के घर पै चल
यूँही लाख किस्से कहूं मैं क्या तुम्हें याद हो कि न याद हो।
कहो गोपियों से कहा था क्या, करो याद गीता की भी जरा
वानी वादा भक्त - उधार का तुम्हें याद हो कि न याद हो।
या तुम्हारा ही 'हरिचंद' है गो फसाद में जग के बंद है
है दास जन्मों का आपका तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।

24. जगत में घर की फूट बुरी

जगत में घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सो बिनसाई, सुवरन लंकपुरी।
फूटहिं सो सब कौरव नासे, भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं, अबलौं नाहिं पुज्यो।
फूटहिं सो नवनंद बिनासे, गयो मगध को राज।
चंद्रगुप्त को नासन चाह्यौ, आपु नसे सहसाज।
जो जग में धनमान और बल, अपुनो राखन होय।
तो अपने घर में भूलेहु, फूट करो मति कोय।।

25. सखी हम बंसी क्यों न भए

सखी हम बंसी क्यों न भए।
अधर सुधा-रस निस-दिन पीवत प्रीतम रंग रए।
कबहुँक कर में, कबहुँक कटि में, कबहूँ अधर धरे।
सब ब्रज-जन-मन हरत रहति नित कुंजन माँझ खरे।
देहि बिधाता यह बर माँगों, कीजै ब्रज की धूर।
'हरीचंद' नैनन में निबसै मोहन-रस भरपूर।।

26. रोकहिं जौं तो अमंगल होय

रोकहिं जौं तो अमंगल होय, औ प्रेम नसै जै कहैं पिय जाइए।
जौं कहैं जाहु न तौ प्रभुता, जौ कछु न तौ सनेह नसाइए।

जौं 'हरिचंद' कहै तुम्हरे बिन जीहै न, तौ यह क्यों पतिआईए।
तासौं पयान समै तुम्हरे, हम का कहैं आपै हमें समझाइए।

27. मारग प्रेम को को समझै

मारग प्रेम को को समझै 'हरिचंद' यथारथ होत यथा है।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होने की सारी कथा है।
जानत है जिय मेरो भला बिधि और उपाय सबै बिरथा है।
बावरे हैं ब्रज के सगरे मोहिं नाहक पूछत कौन विधा है।

28. काल परे कोस चलि चलि थक गए पाय

काल परे कोस चलि चलि थक गए पाय,
सुख के कसाले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान पर-बस के।
'हरिचंद' अंगहू हवाले परे रोगन के,
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन छाले परे लांघिबे को नाले परे,
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।

29. रहैं क्यौं एक म्यान असि दोय

रहैं क्यौं एक म्यान असि दोय।
जिन नैनन मैं हरि-रस छायो, तेहि क्यौं भावै कोय।
जा तन मन मैं राहि रहै मोहन, तहाँ ग्यान क्यौं आवै।
चाहो जितनी बात प्रबोधो, ह्याँ को जो पतिआवै।
अमृत खाई अब देखि इनारुन, को मूरख जो भूलै।
'हरिचंद' ब्रज तो कदली-बन, काटौ तो फिरि फूलै।।

30. लहौ सुख सब विधि भारतवासी

लहौ सुख सब विधि भारतवासी।
विद्या कला जगत की सीखो, तजि आलस की फाँसी।
अपने देश, धरम, कुल समझो, छोड़ वृत्ति निज दासी।
पंचपीर की भगति छोडि, होवहु हरिचरन उपासी।
जग के और नरन सम होऊ, येऊ होय सबै गुन रासी।

31. अथ अंकमयी

(शब्दों के स्थान पर अंकों का प्रयोग)
करि वि4 देख्यौ बहुत जग बिन 2स न 1।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित 900 पथ टेक।।
ह 3 तुम पर सैन लै 80 कहत करि 100ह।
पै बिन7 प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौंह।।
सो 13 ते लोग सब बिल 17 त सचैन।
अ 11 ती जागती पै सब 6न दिन-रैन।।
सखि तुव मुख 26 सि सबै कै 16 त अनंद।
निहचौ 27 की तुम में परम अमंद।।
जिमि 52 के पद तरे 14 लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहि बिस्वे 20 जनात।।
61 खल नहिं राज में 25 बन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि 6 पद गाय।।
किये 100000000000 बल 1000000000 के तनिकहिं भौंह मरोर।
40 की नहिं अरिन की, सैन-सैन लखि तोर।।
तुव पद 100000000000000 प्रताप को करत सुकवि पि 10000000।
करत 10000000 बहु 100000 करि, होत तऊ अति थोर।।
तुम 31 ब में बड़ीं ताते बिरच्यौ छंद।
तुव जस परिमल ।।। लहि, अंक चित्र हरिचंद।।
अब जरा उपरोक्त रचना को पुनः पढ़ें–
करि विचार देख्यौ बहुत जग बिन दोस न एक।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक।।
हती न तुम पर सैन लै असी कहत करि सौंह।
पै बिनसात प्रताप-बल सत्रु मरोरै भौंह।।
सोते रहते लोग सब बिलसत रहत सचैन।
अग्या रहती जागती पै सब छन दिन-रैन।।
सखि तुव मुख छबि ससि सबै कैसो रहत अनंद।
निहचौ सत्ता ईस की तुम में परम अमंद।।
जिमि बामन के पद तरे चौदह लोक लखात।
तिमि भुव तुम अधिकार मोहि बिस्वे बीस जनात।।

इक सठ खल नहिं राज में पची सबन की बाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि षट-पद गाय।।
किये खरब बल अरब के तनिकहिं भौंह मरोर।
चालि सकी नहिं अरिन की, सैन-सैन लखि तोर।।
तुव पद पद्म प्रताप को करत सुकवि पिक रोर।
करत कोटि बहु लक्ष करि, होत तऊ अति थोर।।
तुम इकती सब में बड़ीं ताते बिरच्यौ छंद।
तुव जस परिमल पौन लहि, अंक चित्र हरिचंद।।

32. हरि को धूप-दीप लै कीजै

हरि को धूप-दीप लै कीजै।
षटरस बींजन विविध भाँति के नित नित भोग धरीजै।
दही, मलाई, घी अरु माखन तापो पै लै दीजै।
'हरीचंद' राधा-माधव-छबि, देखि बलैंया लीजै।।

33. सुनौ सखि बाजत है मुरली

सुनौ सखि बाजत है मुरली।
जाके नेंक सुनत ही हिअ में उपजत बिरह-कली।
जड़ सम भए सकल नर, खग, मृग, लागत श्रवन भली।
'हरीचंद' की मति रति गति सब धारत अधर छली।।

34. बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी

बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी।
सुनत श्रवन मन थकित भयो अरु मति गति जाति भजी।
सात सुरन अरु तीन ग्राम सों पिय के हाथ सजी।
'हरीचंद' औरहु सुधि मोही जबही अधर तजी।।

35. सखी हम काह करैं कित जायं

सखी हम काह करैं कित जायं
बिनु देखे वह मोहिनी मूरति नैना नाहिं अघायँ
बैठत उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और
सुमिरन वही ध्यान उनको हि मुख में उनको नाम
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु मोहन घनश्याम

सब ब्रज बरजौ परिजन खीझौ हमरे तो अति प्रान
'हरीचन्द' हम मगन प्रेम-रस सूझत नाहिं न आन

36. मेरे नयना भये चकोर

मेरे नयना भये चकोर
अनुदिन निरखत श्याम चन्द्रमा सुन्दर नंदकिशोर
तनिक भये वियोग उर बाढ़त बहु बिधि नयन मरोर
होत न पल की ओट छिनकहूँ रहत सदा दृग जोर
कोऊ न इन्हें छुडावनहारों अरुझे रूप झकोर
'हरिचन्द' नित छके प्रेम रस जानत साँझ न भोर

37. ब्रज के लता पता मोहिं कीजै

ब्रज के लता पता मोहिं कीजै
गोपी पद-पंकज पावन की रज जामै सिर भीजै
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै
श्री राधे राधे मुख यह बर हरीचन्द को दीजै

38. निवेदन-पंचक

श्याम घन अब तौ जीवन देहु।
दुसह दुखद दावानल ग्रीषम सों बचाइ जग लेहु।
तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु।
'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पैं करि नेहु ।। 1।।
श्याम घन निज छबि देहु दिखाय।
नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय।
मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु बरसाय।
श्रवन सुखद गरजन बंसी धुनि अब तौ देहु सुनाय।
ताप पाप सब जग कौ नासौ नेह-मेह बरसाय।
'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि ब्रजराय।। 2।।
श्याम घन अब तौ बरसहु पानी।
दुखित सबै नर नारी खग-मृग कहत दीन सम बानी।
तपत प्रचण्ड सूर निरदय हवै दूबहु हाय झुरानी।
'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपनो जानी।। 3।।
कितै बरसाने-वारी राधा।
हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा।

कठिन निदाघ लता वीरुध तृन पसु पंछी तन दाधा।
चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा।
तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि दया-समुद्र अगाधा।
'हरीचंद' यही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा।। 4।।
जगत की करनी पै मति जैये।
करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसैये।
देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये।
'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचौये।। 5।।

इस प्रकार भारतेंदु-युग साहित्य के नव जागरण का युग था, जिसमें शताब्दियों से सोये हुए भारत ने अपनी आँखें खोलकर अंगड़ाई ली और कविता को राजमहलों से निकालकर जनता से उसका नाता जोड़ा। उसे कृत्रिमता से मुक्त कर स्वाभाविक बनाया, शृंगार को परिमार्जित रूप प्रदान किया और कविता के पथ को प्रशस्त किया। भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखकों के साहित्य में जिन नये विषयों का समावेश हुआ, उसने आधुनिक काल की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इस प्रकार भारतेंदु युग आधुनिक युग का प्रवेश द्वार सिद्ध होता है।

3

प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र (24सितंबर,1856 - 6जुलाई,1894) भारतेन्दु मण्डल, के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेंदु निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शों के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेंदु पर उनकी अन्य श्रद्धा थी, वह अपने आप को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भाँति उनका स्मरण करते थे। भारतेंदु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी 'प्रति-भारतेंदु' और 'द्वितीय हरिश्चंद्र' कहे जाने लगे थे।

जीवनी

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैजे गाँव निवासी, कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. संकटा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अँगरेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रावस्था से ही 'कविवचनसुधा' के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आसपास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुई और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधिमंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण संपादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रहा।

1889 में मिश्र जी 25 रु. मासिक पर 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यों में पूर्ववत रुचि लेते रहे और 'ब्राह्मण' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा-समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में

ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षों तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं –

(क) नाटक–गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ–राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला

(घ) कविता–प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे - घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है, आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ीबोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदुजी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृतिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली - इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी

अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- पं0 प्रतापनारायण मिश्र और पं0 बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

बात

प्रतापनारायण मिश्र

यदि हम वैद्य होते तो कफ और पित्त के सहवर्ती बात की व्याख्या करते तथा भूगोलवेत्ता होते तो किसी देश के जल बात का वर्णन करते। किंतु इन दोनों विषयों में हमें एक बात कहने का भी प्रयोजन नहीं है। इससे केवल उसी बात के ऊपर दो चार बात लिखते हैं जो हमारे सम्भाषण के समय मुख से निकल-निकल के परस्पर हृदयस्थ भाव प्रकाशित करती रहती है। सच पूछिए तो इस बात की भी क्या बात है जिसके प्रभाव से मानव जाति समस्त जीवधारियों की शिरोमणि (अशरफुल मखलूकात) कहलाती है। शुकसारिकादि पक्षी केवल थोड़ी सी समझने योग्य बातें उच्चरित कर सकते हैं इसी से अन्य नभचारियों की अपेक्षा आद्रित समझे जाते हैं। फिर कौन न मान लेगा कि बात की बड़ी बात है। हाँ, बात की बात इतनी बड़ी है कि परमात्मा को सब लोग निराकार कहते हैं तौ भी इसका संबंध उसके साथ लगाए रहते हैं। वेद ईश्वर का वचन है, कुरआनशरीफ कलामुल्लाह है, होली बाइबिल वर्ड आफ गाड है यह वचन, कलाम और वर्ड बात ही के पर्याय हैं सो प्रत्यक्ष में मुख के बिना स्थिति नहीं कर सकती। पर बात की महिमा के अनुरोध से सभी धर्मावलंबियों ने 'बिन बानी वक्त बड़ योगी' वाली बात मान रक्खी है। यदि कोई न माने तो लाखों बातें बना के मनाने पर कटिबद्ध रहते हैं।

यहाँ तक कि प्रेम सिद्धांती लोग निरवयव नाम से मुँह बिचकावैंगे। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता' इत्यादि पर हठ करने वाले को यह कहके बात में उड़ावेंगे कि 'हम लँगड़े लूले ईश्वर को नहीं मान सकते। हमारा प्यारा तो कोटि काम सुंदर श्याम बरण विशिष्ट है।' निराकार शब्द का अर्थ श्री शालिग्राम शिला है जो उसकी स्यामता को द्योतन करती है अथवा योगाभ्यास का आरंभ करने वाले को आँखें मूँदने पर जो कुछ पहिले दिखाई देता है वह निराकार अर्थात् बिलकुल काला रंग है। सिद्धांत यह कि रंग रूप रहित को सब रंग रंजित एवं अनेक रूप सहित ठहरावेंगे किंतु कानों अथवा प्रानों वा दोनों को प्रेम रस से सिंचित करने वाली उसकी मधुर मनोहर बातों के मजे से अपने को वंचित न रहने देंगे।

जब परमेश्वर तक बात का प्रभाव पहुँचा हुआ है तो हमारी कौन बात रही? हम लोगों के तो 'गात माहिं बात करामात है।' नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य, कोश इत्यादि सब बात ही के फैलाव हैं जिनके मध्य एक-एक ऐसी पाई जाती है जो मन, बुद्धि, चित्त को अपूर्व दशा में ले जाने वाली अथच लोक परलोक में सब बात बनाने वाली है। यद्यपि बात का कोई रूप नहीं बतला सकता कि कैसी है पर बुद्धि दौड़ाइए तो ईश्वर की भाँति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा।

बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहाती बात, लगती बात इत्यादि सब बात ही तो है? बात के काम भी इसी भाँति अनेक देखने में आते हैं। प्रीति बैर, सुख दुःख श्रद्धा घृणा, उत्साह अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजतया बात के द्वारा विदित हो सकते हैं दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं। घर बैठे लाखों कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बतला सकती है। डाकखाने अथवा तारघर के सारे से बात की बात में चाहे जहाँ की जो बात हो जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात उखड़ती है।

हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात पर निर्भर करते हैं - 'बातहि हाथी पाइए, बातहि हाथी पाँव।' बात ही से पराए अपने और अपने पराए हो जाते हैं। मक्खीचूस उदार तथा उदार स्वल्पव्ययी, कापुरुष युद्धोत्साही एवं युद्धप्रिय शांतिशील, कुमार्गी सुपथगामी अथच सुपंथी कुराही इत्यादि बन जाते हैं। बात का तत्व समझना हर एक का काम नहीं है और दूसरों की समझ पर आधिपत्य जमाने

योग्य बात बढ़ सकता भी ऐसों वैसों का साध्य नहीं है। बड़े-बड़े विज्ञवरों तथा महा-महा कवीश्वरों के जीवन बात ही के समझने समझाने में व्यतीत हो जाते हैं। सहृदयगण की बात के आनंद के आगे सारे संसार तुच्छ जँचता है। बालाकों की तोतली बातें, सुंदरियों की मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी बातें, सत्कवियों की रसीली बातें, सुवक्ताओं की प्रभावशाली बातें जिसके जी को और का और न कर दें उसे पशु नहीं पाषाण खंड कहना चाहिए। क्योंकि कुत्ते, बिल्ली आदि को विशेष समझ नहीं होती तो भी पुचकार के 'तू तू' 'पूसी पूसी' इत्यादि बातों के दो तो भावार्थ समझ के यथा सामर्थ्य स्नेह प्रदर्शन करने लगते हैं। फिर वह मनुष्य कैसा जिसके चित्त पर दूसरे हृदयवान की बात का असर न हो।

बात वह आदणीय है कि भलेमानस बात और बाप को एक समझते हैं। हाथी के दाँत की भाँति उनके मुख से एक बार कोई बात निकल आने पर फिर कदापि नहीं पलट सकती। हमारे परम पूजनीय आर्यगण अपनी बात का इतना पक्ष करते थे कि 'तन तिय तनय धाम धन धरनी। सत्यसंध कहँ तून सम बरनी'। अथच 'प्रानन ते सुत अधिक है सुत ते अधिक परान। ते दूनौ दसरथ तजे वचन न दीन्हों जान।' इत्यादि उनकी अक्षरसंवद्धा कीर्ति सदा संसार पट्टिका पर सोने के अक्षरों से लिखी रहेगी। पर आजकल के बहुतेरे भारत कुपुत्रों ने यह ढंग पकड़ रक्खा है कि 'मर्द की जबान (बात का उदय स्थान) और गाड़ी का पहिया चलता ही फिरता रहता है।'

आज और बात है कल ही स्वार्थांधता के वंश हुजूरों की मरजी के मुवाफिक दूसरी बातें हो जाने में तनिक भी विलंब की संभावना नहीं है। यद्यपि कभी-कभी अवसर पड़ने पर बात के अंश का कुछ रंग-ढंग परिवर्तित कर लेना नीति विरुद्ध नहीं है, पर कब? जात्योपकार, देशोद्धार, प्रेम प्रचार आदि के समय, न कि पापी पेट के लिए। एक हम लोग हैं जिन्हें आर्यकुलरत्नों के अनुगमन की सामर्थ्य नहीं है। किंतु हिंदुस्तानियों के नाम पर कलंक लगाने वालों के भी सहमार्गी बनने में घिन लगती है।

इससे यह रीति अंगीकार कर रखी है कि चाहे कोई बड़ा बतकहा अर्थात् बातूनी कहै चाहै यह समझे कि बात कहने का भी शउर नहीं है किंतु अपनी मति अनुसार ऐसी बातें बनाते रहना चाहिए जिनमें कोई न कोई, किसी न किसी के वास्तविक हित की बात निकलती रहे। पर खेद है कि हमारी बातें सुनने वाले उँगलियों ही पर गिनने भर को हैं। इससे 'बात बात में वात' निकालने का उत्साह नहीं होता। अपने जी को 'क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने' इत्यादि

विदग्धालापों की लेखनी से निकली हुई बातें सुना के कुछ फुसला लेते हैं और बिन बात की बात को बात का बतंगड़ समझ के बहुत बात बढ़ाने से हाथ समेट लेना ही समझते हैं कि अच्छी बात है।

आकाशबाणी

प्रतापनारायण मिश्र

हमारे मिस्टर अंगरेजीबाज और उसके गुरु गौरंडाचार्य में यह एक बुरा आरजा है कि जो बात उनकी समझ में नहीं आती उसे, वाहियात है (ओह नांसेंस), कह के उड़ा देते हैं। नहीं तो हमारे शास्त्रकारों की कोई बात व्यर्थ नहीं है। बहुत छोटी-छोटी बातें विचार देखिए। पयश्राव के समय यज्ञोपवीत कान में चढ़ाना इसलिए लिखा है कि लटक के भीग न जाय। तिनका तोड़ने का निषेध किया है, सो इसलिए कि नख में प्रविष्ट होके दु:ख न दे। दाँत से नख काटना भी इसी से वर्जित है कि जिंदा नाखून कट जाएगा तो डॉक्टर साहब की खुशामद करनी पड़ेगी।

अस्तु यह रामरसरा फिर कभी छेड़ेंगे, आज हम इतना कहा चाहते हैं कि पुराणों में बहुधा लिखा है कि अमुक अकाशबाणी हुई। इस पर हमारे प्यारे बाबू साहबों का, श्यह नहीं होने सकता' इत्यादि कहना व्यर्थ है। इस्से उनकी अनसमझी प्रगट होती है। क्योंकि आकाश अर्थात पोपालन के बिना तो कोई शब्द हो ही नहीं सकता। इस रीति से वचन मात्र को आकाशबाणी कह सकते हैं, और सुनिए, चराचर में व्याप्त होने के कारण ईश्वर को आकाश से एक देशी उपमा दी जा सकती है।

बेद में भी 'खम् ब्रह्म' लिखा है और प्रत्येक आस्तिक का मंतव्य है कि ईश्वर की प्रेरणा बिना कुछ हो ही नहीं सकता। पत्ता कहीं हुक्म बिना हिला है? तो संसार भर की बातें आकाशवत् परमात्मा की प्रेरित नहीं हैं तो क्या हैं? शब्द ब्रह्म और खम् ब्रह्म इन दोनों बातों का ठीक-ठीक समझने वाला आकाशबाणी से कैसे चकित होगा? यदि डियर सर (प्रिय महाशय) आस्तिक न हों तौ भी यों समझ सकते हैं कि हृदय का नाम आकाश है, क्योंकि वह कोई दृश्य वस्तु नहीं है, न तत्व सम्मेलन से बना है। एक विज्ञानी से किसी ने पूछा था कि हृदय क्या है - उसने उत्तर दिया - No matter अर्थात वह किसी वस्तु से बना नहीं है और यह तो प्रत्यक्ष ही है, यावत संकल्प विकल्प हैं सबका आकाश उसी में है।

हमारी भाषा कवियों के शिरोमुकुट गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हृदयाकाश माना है 'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकाशा।' इस वाक्य में यदि हृदय को आकाश न कहें तो दयारूपी चंद्रमा का प्रकाश कहाँ ठहरे? अत: हृदय में हर्ष शोक चिंतादि के समय जितनी तरंगें उठती हैं, सब आकाशबाणी (अवाजे गैब) हैं। यह तो हमारे यहाँ का मुहावरा है। समझदार के आगे कह सकते हैं कि अमुक पुरुष अपने प्रियतम के वियोग में महा शोकाकुल बैठा था इतने में उसे आकाशबाणी हुई कि रोने से कुछ न होगा। उस्के मिलने का यत्न करो। ठीक ऐसे ही अवसरों पर आकाशबाणी होना लिखा है। जिसे कुछ भी बुद्धि संचालन का अभ्यास है वह भलीभाँति समझ समता है। हमारे उर्दू के कवि भी बहुधा किसी पुस्तक के व किसी स्मरणीय घटना के सम्वत् लिखने (कितए तारीख) में कहा करते हैं, 'हातिफे गैब ने कहा नागाह काले साहब की सुर्ख–पाया, फिक्रे तारीख जब हुई दरपेश।' 'गैब से मुझको यह निंदा आई' इत्यादि एक नहीं लाखों उदाहरणों से सिद्ध है कि एशिया के ग्रंथकार मात्र अंत-करण को आकस्मातिक, गति को आकाशबाणी कहते हैं।

किसी देशभाषा के आर्ष प्रयोग के बिना समझे, बिना किसी विद्वान से पूछे, हँस देना मूर्खता की पहिचान है। यदि कोई अंगरेज कहे 'Belly has no eyes' तो हमारे स्कूल के छात्र भी हँस सकते हैं कि कौन नहीं जानता कि पेट में आँखें नहीं होतीं। साहब बहादुर ने कौन बड़ी विलक्षण बात कही। यह तो एक बच्चा भी जानता है। पर हाँ जब उसे समझा दिया जाएगा कि उक्त बात का यह अर्थ है कि गरजमंद को कुछ नहीं सूझता तब किसी को ठट्टा मारने का ठौर नहीं रहेगा। इसी भाँति हमारे यहाँ की प्रत्येक बात का अभ्यांतरिक अर्थ जाने बिना किसी को अपनी सम्मति देने का अधिकार नहीं है।

कुछ समझ में आया? अब न हमारे पूर्वजों के कथन पर कहना कि 'बेवकूफ थे, कहीं ऐसा भी हो सकता है' नहीं तो हम भी कहेंगे कि 'है। जानै न बूझै कठौता लैकै जूझै।' हि हि हि हि!

आप

प्रतापनारायण मिश्र

ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढंग है? पूछा होता कि आप कौन हैं तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं और आप 'ब्राह्मण'-संपादक हैं अथवा आप पंडितजी हैं, आप राजा जी हैं, आप सेठ जी

हैं, आप लाला जी हैं, आप बाबू साहब हैं, आप मियाँ साहब हैं, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं? यह तो प्रश्न की कोई रीति ही नहीं है। वाहक महाशय! यह हम भी जानते हैं कि आप आप ही हैं, और हम भी वही हैं, तथा इन साहबों की भी लंबी धोती, चमकीली पोशाक, खुंटिहई अंगरखी (मीरजई), सीधी माँग, बिलायती चाल, लंबी दाढ़ी और साहबनी हवस ही कहे देती है - कि

किस रोग की हैं आप दवा कुछ न पूछिए–

अच्छा साहब, फिर हमने पूछा तो क्यों पूछा? इसीलिए कि देखें कि आप 'आप' का ज्ञान रखते हैं वा नहीं? जिस आपको आप अपने लिए तथा औरों के प्रतिदिन रात मुँह पर धरे रहते हैं, वह आप क्या हैं? इसके उत्तर में आप कहिएगा कि एक सर्वनाम है। जैसे मैं, तू, हम, वह, यह आदि हैं वैसे ही आप भी हैं, और क्या है। पर इतना कह देने से न हमीं संतुष्ट होंगे न आप ही के शब्दशास्त्र ज्ञान का परिचय होगा। इससे अच्छे प्रकार कहिए कि जैसे 'मैं' का शब्द अपनी नम्रता दिखलाने के लिए बिल्ली की बोली का अनुकरण है, 'तू' का शब्द मध्यम पुरुष की तुच्छता वा प्रीत सूचित करने के अर्थ में कुत्ते के संबोधन की नकल है, हम तुम संस्कृत के अहं, त्वं का अपभ्रंश हैं, यह वह निकट और दूर की वस्तु वा व्यक्ति के द्योतनार्थ स्वाभाविक उच्चारण हैं, वैसे 'आप' क्या है? किस भाषा के किस शब्द का शुद्ध वा अशुद्ध रूप है और आदर ही में बहुधा क्यों प्रयुक्त होता है?

हुजूर की मुलाजमत से अक्ल ने इस्तेअफा दे दिया हो तो दूसरी बात है नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि 'आप लफ्ज या अरबीस्त' अथवा 'ओरू इटिज ऐन इंग्लिश वर्ड'। जब यह नहीं है तो खामखाह यह हिंदी शब्द है, पर कुछ सिर-पैर, मूड़-गौड़ भी है कि यों ही? आप छूटते ही सोच सकते हैं कि संस्कृत में आप कहते हैं जल को। और शास्त्रों में लिखा है कि विधाता ने सृष्टि के आदि में उसी को बनाया था, यथा-'आप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्' तथा हिंदी में पानी और फारसी में आब का अर्थ शोभा अथच प्रतिष्ठा आदि हुआ करता है। जैसे 'पानी उतरि गा तरवारिन को उई करछुलि के मोल बिकाएँ' तथा पानी उतरिगा रजपूती का उइ फिर बिसुओं ते (बेश्या से भी) बहि जाए' और फारसी में 'आबरू खाक में मिला बैठे' इत्यादि।

इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे। यह आपका समझना निरर्थक तो न होगा, बड़प्पन और आदर का अर्थ अवश्य निकल आवैगा, पर खींच-खाँच

कर, और साथ ही यह शंका भी कोई कर बैठे तो अयोग्य न होगी कि पानी के जल, बारि, अंबु, नीर, तोय इत्यादि और भी तो कई नाम हैं, उनका प्रयोग क्यों नहीं करते 'आप' ही के सुर्खाब का पर कहाँ लगा है? अथवा पानी की सृष्टि सबके आदि में होने के कारण बृद्ध ही लोगों को उसके नाम से पुकारिए तो युक्तियुक्त हो सकता, पर आप तो अवस्था में छोटों को भी आप-आप कहा करते हैं, यह आपकी कौन सी विज्ञता है? या हम यों भी कह सकते हैं कि पानी में गुण चाहे जितने हों, पर गति उसकी नीच ही होती है। तो क्या हमको मुँह से आप-आप करके अधोगामी बनाया चाहते हैं? हमें निश्चय है कि आप पानीदार होंगे तो इस बात के उठते ही पानी-पानी हो जाएंगे, और फिर कभी यह शब्द मुँह पर न लावेंगे।

सहृदय सुहृद्गण आपस में आप-आप की बोली बोलते ही नहीं हैं। एक हमारे उर्दूदाँ मुलाकाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा से आते जाते थे। पर जब ऊपरी व्यवहार मित्रता का सा देखा तो हमने उनसे कहा कि बाहरी लोगों के सामने की बात न्यारी है, अकेले में अथवा अपनायत वालों के आगे आप-आप न किया करो, इसमें भिन्नता की भिनभिनाहट पाई जाती है। पर वह इस बात को न माने, हमने दो चार बार समझाया पर वह 'आप' थे, क्यों मानने लगे! इस पर हमें झुँझलाहट छूटी तो एक दिन उनके आते ही और आप का शब्द मुँह पर लाते ही हमने कह दिया कि 'आपकी ऐसी तैसी'। यह क्या बात है कि तुम मित्र बनकर हमारा कहना नहीं मानते? प्यार के साथ तू कहने में जितना स्वादु आता है उतना बनावट से आप साँप कहो तो कभी सपने में नहीं आने का। इस उपदेश को वह मान गए। सच तो यह है कि प्रेमशास्त्र में, कोई बंधन न होने पर भी, इस शब्द का प्रयोग बहुत ही कम, बरंच नहीं के बराबर होता है।

हिंदी कविता में हमने दो ही कवित्त इससे युक्त पाए हैं, एक तो 'आपको न चाहै ताकि बाप को न चाहिए'। पर यह न तो किसी प्रतिष्ठित ग्रंथ का है और न इसका आशय स्नेह संबद्ध है। किसी जले भुने कवि ने कहा मारा हो तो यह काई नहीं कह सकता कि कविता में भी आप की पूछ है। दूसरी घनानंद जी की यह सवैया है - 'आप ही तौ मन हेरि हर्यौ तिरछे करि नैनन नेह के चाव में' इत्यादि। पर यह भी निराशापूर्ण उपालंभ है, इससे हमारा यह कथन कोई खंडन नहीं कर सकता कि प्रेम-समाज में 'आप' का अदर नहीं है, 'तू' ही प्यारा है।

संस्कृत फारसी के कवि भी त्वं और तू के आगे भवान् और शुमा (तू का बहुवचन) का बहुत आदर नहीं करते, पर इससे आपको क्या मतलब? आप

अपनी हिंदी के 'आप' का पता लगाइए, और न लगै तो हम बतला देंगे। संस्कृत में एक आप्त शब्द है, जो सर्वथा माननीय ही अर्थ में आता है, यहाँ तक कि न्याय शास्त्र में प्रमाण चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द) के अंतर्गत शाब्द-प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि 'आप्तोदेशः शब्दः' अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के समान ही प्रामाणिक होता है, वा यों समझ लो कि आप्त जन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्दबद्ध करते हैं।

इससे जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्यभाषणादि सद्गुणों से संयुक्त हो वह आप्त है, और देवनागरी भाषा में आप्तशब्द उसके उच्चारण में सहजतया नहीं आ सकता। इससे उसे सरल करके आप बना लिया गया है, और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यंत आदर का द्योतन करने के काम में आता है। 'तुम अहुत अच्छे मनुष्य हो' और 'यह सज्जन हैं' – ऐसा कहने से सच्चे मित्र, बनावट के शत्रु चाहे जैसे 'पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता' हो जाए, पर व्यवहारकुशल लोकाचारी पुरुष तभी अपना उचित सम्मान समझेंगे जब कहा जाए कि, 'आपका क्या कहना है, आप तो बस सभी बातों में एक ही हैं, इत्यादि।

अब तो आप समझ गए होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे हैं, यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भी न समझे हो तो इस छोटे से कथन में हम क्या समझ सकेंगे कि आप संस्कृत के आप्त शब्द का हिंदी रूपांतर है, और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है जो सामने विद्यमान हों, चाहे बातें करते हों, चाहें बात करने वालों के द्वारा पूछे बताए जा रहे हों, अथवा दो वा अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो। कभी-कभी उत्तम पुरुष के द्वारा भी इसका प्रयोग होता है, वहाँ भी शब्द और अर्थ वही रहता है, पर विशेषता यह रहती है कि एक तो सब कोई अपने मन से आपको (अपने तईं) आप ही (आप्त ही) समझता है। और विचार कर देखिए तो आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता या तद्रुपता कहीं लेने भी नहीं जानी पड़ती, पर ब्राह्य व्यवहार में अपने को आप कहने से यदि अहंकार की गंध समझिए तो यों समझ लीजिए कि जो काम अपने हाथ से किया जाता है और जो बात अपनी समझ स्वीकार कर लेती है उसमें पूर्ण निश्चय अवश्य ही हो जाता है और उसी के विदित करने को हम और आप तथा यह एवं वो कहते हैं कि 'हम आप कर लेंगे' अर्थात् कोई संदेह नहीं है कि हमसे यह कार्य

संपादित हो जाएगा। 'हम आप जानते हैं', अर्थात् दूसरे के बतलाने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि।

महाराष्ट्रीय भाषा के आपा जी भी उन्नीस बिस्वा आप्त और आर्य के मिलने से इस रूप में हो गए हैं, तथा कोई माने या न माने, पर हम मना सकने का साहस रखते हैं कि अरती के अब्ब (पिता, बोलने में अब्बा) और योरोपिय भाषाओं के पापा (पिता) पोप (धर्म-पिता) आदि भी इसी आप से निकले हैं। हाँ इसके समझने समझाने में भी जी ऊबे तो अँगरेजी के एबाट (A pat egar) तो इसके हई है, क्योंकि उस बोली में ह्रस्व और दीर्ध दोनों प्रकार का स्थानापन्न। है, और पकार का बकार से बदल लेना कई भाषाओं की चाल है। रही टी (T) सो वह तो 'तकार' हई है। फिर क्या न मान लीजिएगा कि एबाट साहब हमारे 'आप' बरंच शुद्ध आप्त से बने हैं!

हमारे प्रांत में बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते हैं, उसे कोई-कोई लोग समझते हैं कि मुसलमानों के सहवास का फल है। पर उनकी यह समझ ठीक नहीं है। मुसलमान भाइयों के लड़के कहते हैं अब्बा और हिंदू संतान के पक्ष में 'बकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नहीं होता, यह अँगरेजों की तकार और फारस वालों की टकार नहीं है कि मुँह से ही न निकले, और सदा मोती का मोटी अर्थात स्थूलांगी स्त्री और खस की टट्टी का तत्ती अर्थात् गरम ही हो जाए। फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा! हाँ आप्त से आप और अप्पा तथा आपा की सृष्टि हुई है, उसी को अरबवालों ने अब्बा में रूपांतरित कर लिया होगा। क्योंकि उनकी वर्णमाला में 'पकार' (पे) नहीं होती।

सौ बिस्वा बप्पा, बाप, बापू, बब्बा, बाबू आदि भी इसी से निकले हैं क्योंकि जैसे एशिया की कई बोलियों में 'पकार' को 'बकार' व फकार से बदल देते हैं, जैसे पादशाह-बादशाह और पारसी-फारसी आदि, वैसे ही कई भाषाओं में शब्द के आदि में बकार भी मिला देते हैं, जैसे वक्ते शब बवक्ते शब तथा तंग आमद-बतंग आमद इत्यादि, और शब्द के आदि को ह्रस्व अकार का कोप भी हो जाता है, जैसे अमावस का मावस ह्रस्व अकारांत शब्दों में अकार के बदले ह्रस्व वा दीर्घ उकार भी हो जाती है, जैसे एक-एकु, स्वाद-स्वादु आदि। अथच ह्रस्व को दीर्ध, दीर्ध को ह्रस्व अ, इ, उ आदि की वृद्धि वा लोप भी हुवा ही करता है, फिर हम क्यों न कहें कि जिन शब्दों में अकार और पकार का संपर्क

हो, एवं अर्थ से श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो वह प्रायः समस्त संसार के शब्द हमारे आप्त महाशय वा आप ही उलट-फेस से बने हैं।

अब तो आप समझ गए न कि आप क्या हैं? अब भी न समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारी के कौन हैं? हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी छदाम की समझ किसी पंसारी के यहाँ से मोल ले आइए, फिर आप ही समझने लगिएगा कि 'आप को हैं? कहाँ के हैं?' यदि यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जाइए तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह लेंगे, 'शाब! आप न समझो तो आपा को के पड़ी छै।' ऐं! अब भी नहीं समझे? वाह रे आप!

आलमे तसबीर (1)

प्रतापनारायण मिश्र

हमारे मिस्टर अंगरेजीबाज और उसके गुरु गौरंडाचार्य में यह एक बुरा आरजा है कि जो बात उनकी समझ में नहीं आती उसे, वाहियात है (ओह नांसेंस), कह के उड़ा देते हैं। नहीं तो हमारे शास्त्रकारों की कोई बात व्यर्थ नहीं है। बहुत छोटी-छोटी बातें विचार देखिए। पयश्राव के समय यज्ञोपवीत कान में चढ़ाना इसलिए लिखा है कि लटक के भीग न जाय। तिनका तोड़ने का निषेध किया है, सो इसलिए कि नख में प्रविष्ट होके दुःख न दे। दाँत से नख काटना भी इसी से वर्जित है कि जिंदा नाखून कट जाएगा तो डॉक्टर साहब की खुशामद करनी पड़ेगी।

अस्तु यह रामरसरा फिर कभी छेड़ेंगे, आज हम इतना कहा चाहते हैं कि पुराणों में बहुधा लिखा है कि अमुक अकाशबाणी हुई। इस पर हमारे प्यारे बाबू साहबों का, श्यह नहीं होने सकता' इत्यादि कहना व्यर्थ है। इस्से उनकी अनसमझी प्रगट होती है। क्योंकि आकाश अर्थात पोपालन के बिना तो कोई शब्द हो ही नहीं सकता। इस रीति से वचन मात्र को आकाशबाणी कह सकते हैं, और सुनिए, चराचर में व्याप्त होने के कारण ईश्वर को आकाश से एक देशी उपमा दी जा सकती है।

बेद में भी 'खम् ब्रह्म' लिखा है और प्रत्येक आस्तिक का मंतव्य है कि ईश्वर की प्रेरणा बिना कुछ हो ही नहीं सकता। पत्ता कहीं हुक्म बिना हिला है? तो संसार भर की बातें आकाशवत् परमात्मा की प्रेरित नहीं हैं तो क्या हैं? शब्द ब्रह्म और खम् ब्रह्म इन दोनों बातों का ठीक-ठीक समझने वाला आकाशवाणी

से कैसे चकित होगा? यदि डियर सर (प्रिय महाशय) आस्तिक न हों तौ भी यों समझ सकते हैं कि हृदय का नाम आकाश है, क्योंकि वह कोई दृश्य वस्तु नहीं है, न तत्व सम्मेलन से बना है। एक विज्ञानी से किसी ने पूछा था कि हृदय क्या है – उसने उत्तर दिया – छव उंजजमत अर्थात वह किसी वस्तु से बना नहीं है और यह तो प्रत्यक्ष ही है, यावत संकल्प विकल्प हैं सबका आकाश उसी में है।

हमारी भाषा कवियों के शिरोमुकुट गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी हृदयाकाश माना है 'हृदय अनुग्रह इंदु प्रकाशा।' इस वाक्य में यदि हृदय को आकाश न कहें तो दयारूपी चंद्रमा का प्रकाश कहाँ ठहरे? अतः हृदय में हर्ष शोक चिंतादि के समय जितनी तरंगे उठती हैं, सब आकाशवाणी (अवाजे गैब) हैं। यह तो हमारे यहाँ का मुहावरा है। समझदार के आगे कह सकते हैं कि अमुक पुरुष अपने प्रियतम के वियोग में महा शोकाकुल बैठा था इतने में उसे आकाशवाणी हुई कि रोने से कुछ न होगा। उस्के मिलने का यत्न करो। ठीक ऐसे ही अवसरों पर आकाशबाणी होना लिखा है। जिसे कुछ भी बुद्धि संचालन का अभ्यास है वह भलीभाँति समझ समता है। हमारे उर्दू के कवि भी बहुधा किसी पुस्तक के व किसी स्मरणीय घटना के सम्वत् लिखने (कितए तारीख) में कहा करते हैं, 'हातिफे गैब ने कहा नागाह काले साहब की सुर्खः पाया, फिक्रे तारीख जब हुई दरपेश।' 'गैब से मुझको यह निंदा आई' इत्यादि एक नहीं लाखों उदाहरणों से सिद्ध है कि एशिया के ग्रंथकार मात्र अंत-करण को आकस्मातिक, गति को आकाशबाणी कहते हैं।

किसी देशभाषा के आर्ष प्रयोग के बिना समझे, बिना किसी विद्वान से पूछे, हँस देना मूर्खता की पहिचान है। यदि कोई अंगरेज कहे 'Belly has no eyes' तो हमारे स्कूल के छात्र भी हँस सकते हैं कि कौन नहीं जानता कि पेट में आँखें नहीं होतीं। साहब बहादुर ने कौन बड़ी विलक्षण बात कही। यह तो एक बच्चा भी जानता है। पर हाँ जब उसे समझा दिया जाएगा कि उक्त बात का यह अर्थ है कि गरजमंद को कुछ नहीं सूझता तब किसी को ठट्टा मारने का ठौर नहीं रहेगा। इसी भाँति हमारे यहाँ की प्रत्येक बात का अभ्यांतरिक अर्थ जाने बिना कसी को अपनी सम्मति देने का अधिकार नहीं है।

कुछ समझ में आया? अब न हमारे पूर्वजों के कथन पर कहना कि 'बेवकूफ थे, कहीं ऐसा भी हो सकता है' नहीं तो हम भी कहेंगे कि '3है। जानै न बूझै कठौता लैकै जूझै।' हि हि हि हि!

आलमे तसबीर (2)

प्रतापनारायण मिश्र

यह हजरत गोरक्षा ही के द्वेषी नहीं हैं, हमारे कांग्रेस के भी द्वेषी हैं। गत मास में हम दिखा चुके हैं कि गोरक्षा विषयक साधारण व्याख्यान पर आपने कितनी झूठ के साथ कैसा-कैसा अमूलक झगड़ा रोपा था। आज उससे बढ़ के कांग्रेस विषयक प्रपंच लीजिए। 27 अप्रैल के पत्र में मेरठ का हाल लिखते हैं, जिसका भावार्थ यह है कि 'बाबू रघुबरसरन वकील ने कांग्रेस के लाभ वर्णन करके सैयद मीर मुहम्मद को कांग्रेस का हमदर्द बताया, पर सैयद ने कांग्रेस के विरुद्ध कहा। खैर यह तो बाबू रघुबरदयाल साहब की कोई बड़ी भूल भी न थी, वे सैयदजी के अंतरयामी न थे। इसके आगे लिखते हैं 'करीब था कि फौजदारी की नौबत पहुँच जाय' पर साफ-साफ लिखना चाहिए था कि किसकी तरफ से फौजदारी की नौबत पहुँचने के आसार थे।

कांग्रेस के अनुकूल लोग तो केवल सब में मेल बढ़ाना चाहते हैं। हाँ, बहुधा विरोधी लोग झूठ और प्रपंच से काम ले रहे हैं, जिसके उदाहरण अभी लिखे जाते हैं, जैसा लिखते हैं 'अब की साल रंग अच्छा नहीं है। हामिया ने कांग्रेस कुछ जियादा बौखलाहट से काम ले रहे हैं'। यदि सैयद अहमद और उनके संप्रदायियों की खुदगरज, खुशामदी बातों को बिना समझे वा समझ बूझ के अपने विचार शक्ति का खून करके उनका पछलागा न बन जाना ही बौखलाहट है तो और बात है, नहीं तो आ.त. को हमारी बौखलाहट का कोई उदाहरण देना था। और सुनिए 'जैसे 1857 का गदर मेरठ से शुरू हुआ था वैसे कांग्रेस की भी शकररंजी (झमेल) वहीं से शुरू हुई।' तीन बरस से कांग्रेस होती है, कभी शकररंजी न हुई केवल अब की बेर सर सैयद अहमद साहब के बहकाने से कुछ नासमझ लोग कांग्रेस के सहायकों से वैमनस्य मानते हैं। पर उस एकतरफी वैनमस्य को सन् 57 के गदर से उपमा देना निरी बौखलाहट है। हम हिंदू मुसलमानों के सामने सैयद साहब के अनुगामी बहुत ही थोड़े हैं। तिस्पर भी जिन्हें कांग्रेस से कुछ संबंध है वे नेचरियों की गालियाँ तक सुन के चुप रहने और मधुर उत्तर देने का इरादा किए हैं, फिर 57 को याद करना हम नहीं जानते क्या गुप्त अर्थ रखता है? यह तो एडिटोरियल नोट का हाल हुआ, अब 21 एप्रिल को श्रीयुत पंडितबर अयोध्यानाथ वकील महोदय ने नाच घर में कांग्रेस संबंधी लेक्चर दिया था, उसपर मियाँ आलम तसबीर फरमाते हैं, 'मुसलमान शायद दस से कुछ ही जियादा थे'। शायद अपनी या अपने आगे पीछे की कुरसी की गिनती

की है, नहीं मुसलमान बेशक सौ के लगभग थे, पर कांग्रेस के विरोधी दस भी न थे। जाहिरा केवल तीन थे, शायद दो एक गुप्त भी हों। आगे चलिए। 'अनुमान दो सौ आदमी जमा थे'। वाह! ऐनक लगाने पर भी यह हाल! इसके आगे श्री पंडित जी के परमोत्तम हृदयग्राही लेक्चर पर खूब उखाड़ पछाड़ की है, जिसका उत्तर देना निरा समय खोना है। बुद्धिमान इतने ही से विचार सकते हैं कि कांग्रेस के विरोधी सत्य को कहाँ तक आदर देते हैं। उन्हीं के एक पत्र प्रेरक, जो लखनऊ के हैं, इस पर तो बिगड़ते हैं कि उक्ति पंडित जी ने 20 तारीख को लेक्चर दिया, उसमें कुरआन की आयतें पढ़ीं। पर इसका बयान उड़ाए जाते हैं कि एक मुसलमान ने भरी भीड़ में बुरी तरह पर गायत्री पढ़ी।

यदि नियत देखी जाय तो पं. जी ने केवल एकता की पुष्टि के लिए कुरान शरीफ का प्रमाण दिया था। इसमें यदि श्री मुहम्मदीय धर्म की अप्रतिष्ठा होती तो शेष रजाहुसेन खाँ साहब (जो उस दिन सभापति थे) और 'अवध पंच' के एडिटर मुंशी सज्जाद हुसैन सा. इत्यादि सज्जन जो वहाँ बैठे थे अवश्य अप्रसन्न होते, क्योंकि वे भी मुसलमान ही हैं। पर शायद कांग्रेस के विरोधी के अनुकूल मुसलमानों को मुलसमान नहीं समझते। क्या आलमे तसबीर इसी पर कहता है कि 'मुसलमानों ने हिंद ने.का. की मुखालफत में निहायत इत्तिफाक जाहिर किया।' परमेश्वर ऐसे अनक्यबद्धकों को सुमति दे जो निज धर्म ग्रंथ के वचन कोई प्रमाणार्थ कहें तो भी अपनी तौहीने महजबी समझते हैं और दूसरों के धर्म वाक्य को खुद जलन के साथ कहने में नहीं लजाते। ऊपर से राजा प्रजा दोनों का हित चाहने वालों को दोष लगाते हैं, पर स्वयं न्यायशील ब्रिटिश सिंह के राज्य में अपने 'सुस्त और कमजोर हाथों से काम लेना' चिताते हैं। न जाने इसमें क्या लोक या परलोक का लाभ समझते हैं।

ईश्वर की मूर्ति

प्रतापनारायण मिश्र

वास्तव में ईश्वर की मूर्ति प्रेम है, पर वह अनिर्वचनीय, मूकास्वादनवत्, परमानंदमय होने के कारण लिखने वा कहने में नहीं आ सकता, केवल अनुभव का विषय है। अतः उसके वर्णन का अधिकार हमको क्या किसी को भी नहीं है। कह सकते हैं तो इतना ही कह सकते हैं कि हृदय मंदिर को शुद्ध करके उसकी स्थापना के योग्य बनाइए और प्रेम दृष्टि से दर्शन कीजिए तो आप ही विदित हो जाएगा कि वह कैसी सुंदर और मनोहर मूर्ति है। पर यतः यह कार्य

सहज एवं शीघ्र प्राप्य नहीं है। इससे हमारे पूर्व पुरुषों ने ध्यान धारण इत्यादि साधन नियत कर रक्खे हैं जिनका अभ्यास करते रहने से उसके दर्शन में सहारा मिलता है। किंतु है यह भी बड़े ही भारी मस्तिष्कमानों का साध्य। साधारण लोगों से इसका होना भी कठिन है। विशेषत: जिन मतवादियों का मन भगवान् के स्मरण में अभ्यस्त नहीं है, वे जब आँखें मूँद के बैठते हैं तब अंधकार के अतिरिक्त कुछ नहीं देख सकते और उस समय यदि घर गृहस्थी आदि का ध्यान न भी करैं तौ भी अपनी श्रेष्ठता और अन्य प्रथावलंबियों की तुच्छता का विचार करते होंगे अथवा अपनी रक्षा वा मनोरथ सिद्धि इत्यादि के मानस से परमात्मा की भी सुध करते हों तो करते हों, नहीं तो केवल मुख से कुछ नियत शब्दों का उच्चारण छोड़ कर ईश्वर का वास्तविक भजन पूजन यदि एक मिनिट भी करते हों तो हमारा जिम्मा। कारण इसका यह है कि मनुष्य का मन होता है चंचल। वह जब तक किसी बहुत ही सुदंर वा भयंकर वस्तु अथवा व्यक्ति वा सुख दु:खादि की ओर न चला जाए तब तक एकाग्र कदापि नहीं होता। हाँ, बड़े-बड़े योगी अभ्यास करते-करते उसे स्वेच्छानुवर्ती बना सकते होंगे, पर अपने सहबर्तियों में तो हम किसी का सामर्थ्य नहीं देखते कि संगीत साहित्य सुरा सौंदर्य इत्यादि की सहायता के बिना कोई मन को एक ओर कर सकता हो, विशेषत: ईश्वर की ओर, जिसकी सभी बातें मन बुद्धि चित्त अहंकार से परे हैं। फिर हम क्यों न कहें कि प्रतिमा पूजन के विरोधी ईश्वर का पूजन तो क्या दर्शन भी नहीं कर सकते। विचार कर देखिए तो प्रतिमा पूजन से नास्तिकों के अतिरिक्त बचा कोई भी नहीं है। जो ईश्वर को मानेगा उसका निर्वाह किसी न किसी प्रकार की प्रतिमा के बिना नहीं हो सकता चाहे ध्यानमई प्रतिमा हो चाहे शब्दमई प्रतिमा हो, हैं सब हमारे ही मन और वचन का विकास और उस निराकार निर्विकार के महत्व का अभ्यास मात्र। पर क्या कीजिए ईश्वर को मान कर चुपचाप बैठे रहें अथवा मन में किसी भाँति उसका विचार आने ही न दें तौ भी नहीं बनता। इसीसे आस्तिक मात्र को उसकी प्रतिमा बनानी पड़ती है। जहाँ हमने मन अथवा वचन से कहा – 'हे प्रभु हम पर दया करो,' वहीं हम उस निराकार की छाती के भीतर मन की कल्पना कर चुके। क्योंकि मन न होगा तो दया ठहरेगी कहाँ, और शरीर न होगा तो मन रहेगा कहाँ? जिस समय हम कहते हैं कि 'हे नाथ! हमारी रक्षा करो, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं' उस समय उस अप्रतिम के अस्तित्व में हाथ और पाँव की कल्पना करते हैं क्योंकि रक्षा हाथों से की जाती है और प्रणाम चरणों पर किया जाता है। कारण के बिना कार्य का मान लेना तर्कशास्त्र के विरुद्ध है,

फिर कौन निराकारवादी ईश्वर के मनरू:कल्पित हस्तपदादि रचना से बच गया? पाषाण धात्वादि निर्मित मूर्ति के पूजने वालों में और इनमें केवल इतना ही अंतर है कि इनके यहाँ की ईश्वर प्रतिमा केवल मन के भाव से गढ़ी जाती है और उनके यहाँ की रजत कांचनादि से, तथा यह मन और वचन से ईश्वर के हाथ पाँव इत्यादि स्वीकार करते हुए भी देख नहीं सकते तथा सर्वसाधारण के आगे कहते हैं कि हमारा ईश्वर निरवयव है और वह जैसा मानते हैं वैसा सबके सामने कह भी देते हैं कि भाई, हमारा ईश्वर लंगड़ा लूला अंधा बहिरा नहीं है, उसके कर पद नयनादि कमल के समान कोमल और सुंदर हैं। फिर मूर्तिपूजक लोग ईश्वर को कौन सी गाली देते हैं कि उन पर आक्षेप किया जाए? विचार के देखिए तो दूसरे पूजकों के देखे इनमें इतनी विशेषता है कि अन्य लोग केवल उसकी महिमा तथा अपने स्वार्थ साधनादि की प्रार्थना का केवल जबानी जमा खर्च रखते हैं। किंतु यह मन और वचन के अतिरिक्त चंदन पुष्पादि के द्वारा तन और राग भोगादि के द्वारा धन से भी उसकी सेवा करते हैं, अपने शयन भोजनादि में भी उसका स्वामित्व बनाए रहते हैं, बरंच उसकी प्रसन्नता के लिए तीर्थ वृतादि में नाना कष्ट सहते हैं, काम पड़े तो उसके लिए प्राण तक उत्सर्ग कर देने को प्रस्तुत रहते हैं। इनके प्रेम की सच्चाई में औरंगजेब के समय मसीह नामक फारसी कवि ने शाक्षी की भाँति कहा था कि अन्य धर्मियों में बहुत थोड़े लोग हैं, बरंच नहीं हैं, जो ईश्वर के नाम पर धन भी लुटा देते हों, किंतु मूर्तिपूजकों का साहस सराहने योग्य है जो उसकी प्रतिमा पर शिर तक निछावर कर देते हैं। एक ऐसो आर्यद्वेषी यवन सम्राट को यहाँ वाले विदेशी विद्वान की लेखनी से ऐसा वचन निकलना क्या इस बात की पक्की शाक्षी नहीं है कि प्रतिमापूजक ईश्वर के साथ बहुत बड़ा प्रेम संबंध रखते हैं? इन्हीं के समुदाय में ऐसे ज्ञानियों औ प्रेमियों की संख्या अधिक निकलेगी जो संसार के यावत् सजीव निर्जीव पदार्थों को ईश्वर ही की मूर्ति समझते हैं। 'मैं सेवक सचराचर रूपरासि भगवंत' - इसका अभिप्राय कुतर्की लोग न समझें तो कोई हानि नहीं है, पर समझने वाले समझ सकते हैं कि जितनी मूर्तियाँ हैं वे सब ईश्वर से व्याप्त हैं और ईश्वर ही सबका एकमात्र स्वामी है। इन दोनों रीतियों से उन्हें ईश्वर की मूर्ति के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? और जिस ईश्वर को हम अपना प्रेमपात्र समझते हैं उसके निवासस्थान वा अधिकृत पदार्थ तथा स्मारक चिह्नों की पूजा किए बिना क्योंकर रह सकते हैं? इसके लिए बड़े-बड़े प्रमाण ढूँढ़ना भी मानो उसके सच्चे प्रेम से जी चुराना है। मजनू ने एक बार लैला के पालित कुत्ते

को अपना बहुमूल्य दुशाला उढ़ा दिया था और बड़े आदर से आलिंगन किया था। इस कथानक पर केवल वही लोग हँसे तो हँसा करें जिन को मतवाद अधिक प्रिय है किंतु जिन्हें ईश्वर प्यारा है वे ऐसी कथाओं को बड़े आदर से सुनेंगे और मनावेंगे कि भगवान हमें भी ऐसा करे। पर जब तक हम ऐसे अधिकारी नहीं हुए तब तक यदि उन मूर्तियों का आदर करें जिनके देखने से हमें ईश्वर के रूप गुण स्वभावादिक स्मरण होता है, तो क्या बुरा करते हैं? इस पर यदि हमारे विपक्षी साहेब कहें कि – 'ऐसा है तो फिर जूता हाड़ इत्यादि को क्यों नहीं पूजते?' तो हमारा यह उत्तर कहीं नहीं गया कि पूजा का अर्थ है सत्कार, और सत्कार उसका किया जाता है जिसे देख सुन के चित्त में प्रेम और प्रसन्नता आवै। अतः जिन्हें उक्त पदार्थों से प्रीति हो वे शौक से उन्हें पूजें पर हम तो अभी इस दर्जे को नहीं पहुँचे, हमें तो नीच प्रकृति के मनुष्यों तक से अश्रद्धा है, अस्मात् पाषाणादि मूर्तियों को पूजनीय मानेंगे, जो न कभी किसी से छल कपट करती हैं, न कुछ माँगती हैं, न कटु वाक्य निकालती हैं। बरंच सम्मुखस्था होते ही हमारे प्यारे मुरली मुकुट धनुर्वाण खंगाकुंश त्रिशूलादिधारी हृदयविहारी का स्मरण कराती हैं जिसके साथ ही हमें बीरता निर्भयता रसिकता आदि की शिक्षा प्राप्त होती है और चंदन कपूर्रादि की सुगंध से घ्राणेन्द्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो जाता है, पंचामृतप्रसादादि से मुख मीठा होता है, नाना भाँति के गीत बाद्यादि से श्रवण पवित्र एवं प्रमुदित होते हैं, शृंगार की छटा तथा एक-एक अंग की शोभा से नेत्र कृतार्थ होते हैं, फिर ऐसी तत्क्षण फलदायिनी प्रतिमाओं को हम क्यों न ईश्वर की प्रतिमा मानें जिनके कारण इस गिरी दशा में भी हमारे सैकड़ों नगरों की शोभा और सहस्त्रों देशभाइयों का उपकार होता है। यदि नए मतवालों का ईश्वर इनके पूजन को अपना पूजन न समझे तो हम समझते हैं वह उन लघुबयस्का निरक्षरा सुंदरियों से भी नासमझ है जिन्हें हम दूसरों पर ढालकर अपने मन का स्नेह समझा देते हैं और वे संकेत मात्र से सब बातें समझ जाती हैं। बरंच इतर लोगों की लज्जा से बोलने का अवसर न होने पर भी हमें संतोषदायक उत्तर दे देती हैं। पर ईश्वर महाराज इतना भी नहीं समझ सकते कि यह प्रतिमा को पूजता है अथवा हमको? यदि ऐसा है तो हम ऐसे समझ के शत्रु को मानना कैसा ईश्वर ही कहना नहीं चाहते। हमारा ईश्वर तो बिना कहे भी हमारे हृदयगत भाव जान लेता है। तिस पर भी जब हम यह न कह के कि – 'हे पाषाण, हमारी पूजा ग्रहण करो', यों कहते हैं कि – 'हे परमेश्वर, हमारी सेवा स्वीकार करो', तो ईश्वर क्योंकर हमें बुतपरस्त समझेगा? जब कि हमारी मूर्तियाँ ही ऐसी सुडौल शिर से पैर तक

ईश्वरीय भाव से पूर्ण होती हैं तो हम क्यों न अपने ईश्वर को उन्हीं के द्वारा रिझावें? इसपर जो लोग में हँसते हैं उन्हें पहिले अपने यहाँ की मूर्तियों को देख के लज्जित होना चाहिए जिनका वर्णन उनके मान्य ग्रंथों में ऐसा अधूरा किया गया है कि एक तो सब अंगों का बोध भी नहीं होता, केवल हाथ पाँव नेत्रादि दो चार अवयव वर्णित हैं, सो भी ऐसे अनगढ़ कि किसी पंच (हास्यजनक समाचारपत्र) में दे दिए जाएं तो पाठकों को हँसाते-हँसाते लुटा दें। यहाँ हम बाइबिल और कुरान में लिखे ईश्वर के अंगों का वर्णन नहीं करते, क्योंकि एक तो उनमें केवल दो एक अंगों को छोड़ के औरों का नाम भी नहीं है। दूसरे जहाँ पर लिखा है कि ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में बनाया, हाँ यदि 'अपने' शब्द का अर्थ आदम की ओर न लगा के ईश्वर की ही ओर लगाएँ तो भी कोई हानि नहीं है क्योंकि आदम की सूरत सिर से पैर तक किसी भाँति अपूर्ण व अनमेल न थी। तीसरे हमारे मुहम्मदीय और मसीहा भाई इन दिनों इस विषय में हमसे छेड़ के विवाद नहीं लेते। अतः हमें तो उनसे झगड़ना अनुचित है। पर हमारे दयानंदी हिंदू भाई इस बात का बाना बाँधे फिरते हैं। इससे हमें उनके यहाँ की कूर्तियाँ देखनी हैं। यदि च वे अपने स्वामी जी के चित्र का अनादर नहीं सह सकते जिसका मूल्य छह पैसे और अधिक से अधिक दो रुपया है, तथा सुंदरता भी ऐसी नहीं है जैसी हमारे रामकृष्णादि की तसवीरों में होती है, और बस, किंतु हमारी स्वर्ण रजत हीरकादि की देव प्रतिमा पोप लीला है, उनका अनादर कोई बात नहीं, पर स्वामी जी क्या फोटो बड़े खूबसूरत चौकठे में बड़ी इज्जत के साथ रखना चाहिए। यों ही जहाँ वेदों में अक्षरार्थ के द्वारा कोई शंका उठावें तो छूटते ही यह उत्तर होगा कि उस रिचा का गूढ़ार्थ और है अथवा अलंकारिक वर्णन है किंतु पुराणों में जहाँ सहज में समझने योग्य विषय न हों वहाँ गूढ़ार्थ वा अलंकारिक अर्थ कुछ नहीं है, केवल गप्पम्बर्तते। और इस पर तुर्रा यह है कि ऐसी ही समझ पर देशहित और ऐक्य प्रचार का भी दावा है। पर हम पूछते हैं कि हठ का अबलंबन न करके कभी कोई भी देश वा जाति में एका फैला सका है कि आप ही अनोखे बन के आए हैं? हमें श्री स्वामी दयानंद सरस्वती की प्रतिकृति अथवा वेद भगवान से बैर नहीं है, पर साथ ही यह भी जिद्द नहीं है कि इनके सिवा और सब बुद्धिविरुद्ध हैं। नहीं, अपने पूर्वपुरुषों के साधारण चिह्न का भी हमें ममत्व स्वभावतः होना चाहिए यदि हम उनके संतान हैं। फिर प्रतिमा और पुराण तो उनके वर्षों के परिश्रम के फल हैं, उनका उपहास करके हम जगत एवं जगदीश्वर को क्या मुँह दिखावैंगे? और यों तो कुतर्क के लिए सभी राहें

खुली हैं। प्रतिमा और पुराण का क्या कहना है, ईश्वर और वेद पर भी आक्षेप हो सकता है। और केवल मुँह के आस्तिकों को उसका उत्तर सूझना कठिन पड़ेगा। न मानिए तो सुन लीजिए, पर उन्हीं कानों से जिनसे आप हमें पुराणों की गुड़बड़ाध्याई सुनाना चाहते हैं। शब्दार्थ और अक्षरार्थ से अलग कोई बात कहिएगा तो हम पुराणों के मंडन में धर धमकेंगे। यह भी स्मरण रखिए कि अलंकार का नाम न लीजिएगा नहीं तो स्वामीजी के भाष्य में केवल चार ही पाँच मिलेंगे, जिनके द्वारा वेद भगवान् की सीधी सादी लेख प्रणाली में बनावट झलकने लगेगी। किंतु हम एक सौ आठ नाम और लक्षण ले बैठेंगे जिनका वेदों में पता भी न लगेगा किंतु पुराणों में अध्याय के अध्याय मिलेंगे। और उस दशा में आप तर्कशास्त्र का अवलंबन करके न बच सकिएगा, केवल काव्यशास्त्र का आश्रय लेना पड़ेगा, जो आपके यहाँ यदि हैं भी तो नहीं के बराबर। पर इन बातों से हमें क्या, बिना जाने हुए विषय में जो कूदेगा वह आप हास्यास्पद होगा। अतः हम अपने प्रस्ताव में क्यों विलंब करें।

हम पर यह दोष लगाया जाता है कि सर्वव्यापी असीम परमात्मा को बित्ता दो बित्ता की मूर्ति में ठहराते हैं। पर वेदों में जहाँ विराट स्वरूप का वर्णन है वहाँ भूमि उसके चरण और सूर्य उसके नेत्र माने गए हैं। असीमता इसमें भी नष्ट हो जाती है क्योंकि पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी स्कूल के बालक तक जानते हैं, वह असीमता के आगे कुछ भी नहीं है। और सुनिए, नेत्र तो हुए सूर्य, पर नेत्र के आगे ऊपर वाले अंगों (मस्तक, कपाल आदि) का नाम ही नदारद। यदि खगोल विद्या के अनुसार मान लें कि नेत्र के ऊपर वाले अंगों के स्थानापन्न वह ग्रह नक्षत्रादि हैं जो सूर्य के ऊपर हैं तो बड़ा ही मजा हो। सूर्य के ऊपर हैं शनिश्चर, वह ईश्वर की खोपड़ी में जा बैठेंगे! कौन जाने इसी से उनका रंग काला वर्णन किया गया हो और इसीसे मतवादियों के ईश्वर की अक्किल डाँवाँडोल रहती हो! इसके सिवा 'यस्यभूमिः प्रभांतरिक्षमुतोदरम्' तथा 'यस्य सूर्यश्चक्षुः' इत्यादि रिचाओं से भूगोल विद्या के अनुसार और भी बड़े तमाशे की बात निकलती है। अर्थात् सूर्य धरती से लाखों गुण बड़ा है सो तो हुवा नेत्र और धरती हुई चरण जिसका वृत्त केवल पचीस सहस्त्र मील के लगभग है। इस लेखे से ईश्वर का स्वरूप 'राई भरे के बिटिया भांटा की बराबर आँख' का उदाहरण बना जाता है। इसके साथ ही जब यह लिखा देखिएगा कि एक आँख सूर्य है दूसरी चंद्रमा, जो पृथिवी से भी कहीं छोटा है, तो हँसी रोकना मुश्किल पड़ेगा। वाह! एक आँख गल भर की, दूसरी आलपीन की नोक भर की भी नहीं!

चरणारविंद ऐसे विचित्र कि एक आँख की अपेक्षा लाखों गुना छोटे और दूसरी आँख से बड़े। तिस पर भी तुर्रा यह कि आँखें भी गोल और पाँव भी गोल। भला ऐसी विचित्र मूर्ति को कौन न कहेगा कि पंच की तसवीर है। आँख की छुटाई बड़ाई का दोष 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः' वाले मंत्र में निकाल डाला गया है। पर वह दोष निकल जाने पर भी ईश्वर को मंगलमय कहते ही डरेगा क्योंकि जब सहस्त्र शिर हुए तो आँखें दो सहस्त्र चाहिए, पर यहाँ वे भी सहस्त्र ही हैं अतः मंगल सवरूप के बदले शुक्र स्वरूप हुए जाते हैं, जो 'नमस्ते' ही भाइयों के मध्य राज्य करने के काम के हैं न कि भक्तों के समुदाय में।

इस प्रकार के कुतर्क वेदों में बहुत जगह निकल सकते हैं जिनकी अपेक्षा ईश्वर का न मानना ही भला है। पर आस्तिकों को उसके माने बिना शांति नहीं होती। इसीसे पुराणों में जहाँ कहीं उसके स्वरूप की कल्पना की गई है वहाँ तदनुरूप यथातथ्य रीति से की गई है पर जिन्हें हार जीत का व्यसन है उन्हें पराए दोष ही ढूँढ़ने में संतोष होता है। पर हमारी दृष्टि में दूसरों को कुछ कहना अपने ही ऊपर दोष लगवाना है। इससे ईश्वर के विषय में केवल इस वाक्य का अनुसरण करना श्रेयस्कर है कि 'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।' इसके अनुसार चौराहे की ईंट, मट्टी का ढेला और हीरा मोती की प्रतिमा सब ईश्वर ही की मूर्ति हैं और उन्हें जो जिस भाव से सच्चे मन के साथ पूजेगा वही अपने मनोरथ को प्राप्त करेगा। क्योंकि ईश्वर किसी रीति विशेष के हाथ बिक नहीं गया न भक्तों की मनसा के अनुकूल रूप धारण में अक्षम है। उसमें किसी शक्ति का अभाव नहीं है। पर इसमें भक्ति होनी चाहिए और यों मौखिकवाद के आगे ईश्वर ही कुछ नहीं है उसकी मूर्ति तो कहाँ से आवेगी। जब आप हमारी मूर्तियों को वैदिक प्रमाणों से पाषाण बनावेंगे तब हम भी कह देंगे कि आप प्रेममय परमात्मा को तो मानते ही नहीं, न उसका प्रेमानंद लाभ करने में यत्नवान होते हैं, केवल शास्त्रार्थ नाधने के लिए 'परमेश्वर' नामक शब्द ठहरा रक्खा है जो परमेश्वर अक्षरों का विकास मात्र है, तथा जिसके विषय में श्री मार्कंडेय पुराण में लिखा है कि 'देवि दैतयेश्वरः शुभस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः' पर भइया, हम तो उसकी संहारिणी आदिशक्ति को मानेंगे, आपके लिए आपकी इच्छा रही। यदि इस उत्तर से आपको क्रोध आवे तो अपने निराकार निर्विकार से हमें दंड दिलवाइए और हम अपने साकार दृश्यमान भगवत्स्वरूप से सहायता लेकर उन्हीं के द्वारा कपाल भंजन करके तत्क्षण अपने ईश्वर की महिमा दिखा देंगे। पर यह बातें तो उस समय के लिए हैं जब झगड़ा खड़ा हो। नहीं तो कल्याण केवल इसमें

है कि धर्म के विषय में न आप न हमसे बोलें न हम आपसे। क्योंकि वह हमारा आपका ईश्वर के साथ निज संबंध है और दो जनों के निज संबंध में अनधिकार हस्तक्षेप करना नीचता है। इससे ईश्वर को चाहे जैसे आप मानिए चाहे जैसे हम मानें, पर अन्य सब विषयों में हम आपको और आप हमको सतचित्त से सहोदर मान के साथ दीजिए। उस दशा में यह भी संभव है कि आपका रंग हमें लगाया जाए अथवा हमारा रंग आपको लग जाए और इस रीति से मृत की भी एकता हो जाए, वा न हो तो भी परस्पर का स्नेह सुभीता तो बना ही रहेगा, जो ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वरूप है, जिसके द्वारा हम ईश्वर प्राप्ति विषयक भी अनेक विध्नों से बच सकते हैं और प्रेमानुभव का अभ्यास करते-करते स्वयं ईश्वर की मूर्ति को देख सकते हैं।

उरदू बीबी की पूँजी

प्रतापनारायण मिश्र

यदि आप किसी साधारण वेश्या के घर पर कभी गए होंगे या किसी जाने वाले से बातचीत की होगी तो आपको भली भाँति ज्ञात होगा कि यद्यपि कभी-कभी विद्वान, धनवान और प्रतिष्ठावान लोग भी उसके यहाँ जा रहते हैं, और जो जाता है वह कुछ दे ही के आता है। एवं उन्हें बाहर से देखिए तो तेल, फूलेल, हार, पान, हुक्का, पीकदान, सच्चा वा झूठा गहना एवं देखने में सुंदर कपड़े से सुसज्जित है। कमरा भी दो एक चित्र तथा गद्दी-तकिया आदि से सजा हुआ है। उनकी बोली बानी हाव भाव भी एक प्रकार की चित्तोल्लसिनी सभ्यता से भरी है। दस-पाँच गीत गजल भी जानती है। पर उनकी असली पूँजी देखिए दो चार रंगीन गोटे पट्टे के कपड़े तथा दो ही चार सच्चे झूठे गहने अथच एक वा दो पलंग और पीतल, टीन, मट्टी आदि की गुड़गुड़ी उड़गुड़ी समेत दस पाँच बरतन के सिवा और कुछ नहीं है। रुपया शायद सब असबाब मिलाके सौ के घर-घाट निकलें, चाहे न भी निकलें। गुण उनमें केवल हाथ मटका के कुछ गाना मात्र, विद्या अशुद्ध फशुद्ध दस ही बारह हिंदी उरदू के गीत मात्र एवं मिष्टभाषण केवल इतना जिस्से आप कुछ दे आवें। बस, इसके सिवा अल्लामियाँ का नाम ही है। उनमे प्रेमी या यों कहिए, अपनी बुरी आदत के गुलाम उनको चाहे जैसा लक्ष्मी, सरस्वती, रंभा, तिलोत्तमा, लैली, शीरीं समझते हों, पर वास्तव में उनके पास पूरी जमा जथा उतनी ही मात्र होगी जितनी हम कह चुके। बरंच उससे भी नयून ही होगी। कभी-कभी वे कह देती हैं कि हम फकीर हैं या हम आपके

भिच्छुक हैं। यह बात उनकी शिष्टता से नहीं बरंच सच ही है, क्योंकि सबसे लेती हैं तौ भी कुछ जुड़ नहीं सकता। यदि पंद्रह बीस दिन कोई न जाए तौ उन्हें वह नगर छोड़ देना पड़े जहाँ वे कई वर्ष रही हैं। प्रिय पाठक! ठीक वही हाल उर्दू जान का भी है।

यद्यपि कुछ-कुछ संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी की भी सहाय है, और उसके चाहने वाले उसे सारे जगत की भाषाओं से उत्तम माने बैठे हैं, पर उसकी वास्तविक पूँजी यदि विचार के देखिए तो आशिक अर्थात किसी को चाहने वाला, माशूक अर्थात कोई रूपवान व्यक्ति जिसे आशिक चाहता हो, बाग अर्थात बाटिका गुल अर्थात फूल, बुलबुल अर्थात एक अच्छी बोली बोलने वाला और फूलों में प्रसन्न रहने वाला पक्षी, बागवान अर्थात माली, सैयाद अर्थात चिड़ीमार, चाँदनी रात औ मेघाच्छन्न दिन, खिलवत अर्थात एकांत स्थान, जिलवत या मजलिस कई एक सुंदर व्यक्तियों का समाज, शराब अर्थात मदिरा, कबाब अर्थात मांस, साकी अर्थात मद्य पिलाने वाला, मुतरिब अर्थात गवैया, रकीब दुश्मन, गैर अर्थात जिसे तुम चाहते हो उसका दूसरा चाहने वाला, नासिह अर्थात मद्य और वेश्यादि के संसर्ग से रोकने वाला, बायज अर्थात उपदेशक, परनिंदा, खुशामद, उलहना, आसमान अर्थात भाग्यवश, इतनी ही बातें हैं जिन्हें उलट फेर के वर्णन किया करो आप बड़े अच्छे उरदूदाँ हो जाएँगे! माशूक के रूप, मुख, नेत्र केशादि की प्रशंसा, अपनी सर्वज्ञता का घमंड, उसे गुल और शमअ अर्थात मोमबत्ती एवं अपने को बुलबुल और पर्वाना अर्थात पतंग से उपमा दे दिया करो, रकीब इत्यादि पर जल-जल के गाली दिया करो, बस उरदू का सर्वस्व आपको मिल जाएगा। चाहे गद्य हो चाहे पद्य हो, चाहे कविता तो चाहे नाटक हो, चाहे अखबार हो, चाहे उपदेश हो, सब में यही बातें भरी हैं। यदि और कोई विद्या का विषय लिखना हो तो संस्कृत, बँगला, नागरी, अरबी, फारसी, अंगरेजी की शरण लीजिए। इन बीबी के यहाँ अधिक गुजांइश नहीं है। और लिखना तो दरकिनार मुख्य-मुख्य शब्द ही लिखके किसी मौलवी से पढ़ा लीजिए, अरे म्याँ मजा ही न आवेगा! हमारे एक मित्र का यह वाक्य कितना सच्चा है कि और सब विद्या हैं यह अविद्या है। जंतम भर पढ़ा कीजिए, तेली के बैल की तरह एक ही जगह घूमते रहोगे। सत्य बिद्या के बतलाइए तौ कै ग्रंथ हैं? हाय न जाने देश का दुर्भाग्य कब मिटैगा कि राजा-प्रजा दोनों इस मुलम्मे को फेंक के सच्चे सोने को पहिचानेंगे। जानते सब हैं कि पूँजी इतनी मात्र है, पर प्रजा का अभाग्य, राजा की रीझ बूझ! और क्या कहा जाए।

एक

प्रतापनारायण मिश्र

इस अनेकवस्त्वात्मक विश्व का कर्ता, धरता, भर्ता, हर्ता परमेश्वर एक है! उसके मिलने का मार्ग प्रेम ही केवल एक है। आदिदेव श्री गणेश जी का दाँत एक है। अंकशास्त्र का मूल एक है! सत्पुरुष की बात एक है! उनका वचन यही है कि बात और बाप एक है। परमपूजनीय स्त्री का पति एक है। दिन का प्रकाशक दिवाकर एक है। रात में भी यावत तेजधारियों का राजा निशानाथ एक है। सबकी उन्नति का कारण दृढ़ोद्योग एक है। सबके नाश का मल आलस्य एक है। जहाँ तक बिचार करते जाइए यही सिद्ध होगा कि तीन काल और तीन लोक में जो कुछ है सब एक ही तंत में बँधा है! कोई बात बिचारना हो, जब तक एक चित्त होके, एकांत में बैठके, न विचारिएगा कभी न विचार सकिएगा।

यदि किसी एक पदार्थ को अनेक भागों में विभक्त कर डालिए तो उसका नाम, रूप, गुण कुछ भी न रहेगा। 1 सौ रुपये का लेंप है, यदि उसके प्रत्येक अवयव को अलग-अलग कर दीजिए तो किसी अंक का नाम चिमनी है, किसी खंड का नाम कुप्पी है, कोई भाग बत्ती कहलाता है, कोई तेल बोला जाता है। लेंप कहाने के योग्य कोई अंश न रहेगा। वह सुंदरता भी जाती रहेगी। एक टुकड़ा काँच किसी चिलम-सा है, एक चपटा गोला-सा है। बत्ती अलग लत्ता-सी पड़ी है, तेल अलग, दुखियों के से आँसू बहा-बहा फिरता है।

मुख्य काम अर्थात् अंधकार मिटाना तो सर्वथा असंभव है। यही एक-एक अवयव को भी अनेक खंड कर डालिए तो और भी दुर्दशा है। जिसे महफिल की शोभा समझते थे वह राह में फेंकने योग्य भी न रहेगा (ऐसा न हो किसी को गड़ जाय) और आगे बढ़िए तो धूल ही हाथ लगेगी। इस छोटे-से उदाहरण को सामने रख के संसार भरे की वस्तुओं को देख जाइए, यही पाइएगा कि एक का अनेक होना ही नाश का हेतु है। इसके विरुद्ध छोटा से छोटे राई का दाना और बड़े से बड़ा पर्वत अपनी बोली में यही कह रहा है कि अनेक परमाणुओं का एक हो जाना ही अस्तित्व की सफलता है! एक की सामर्थ्य यह है कि एक औ एक ग्यारह होते हैं।

यदि देशकालादि की सहायता न पावैं तौ भी दोनों बने बनाए हैं। उन एक और एक में एक और मिल जाय तो एक सौ ग्यारह हो जायँगे अथवा इक्कीस तथा बारह नहीं तो हारै दरजे तीन तौ हई। फिर न जाने आप एक को क्यों नहीं

दृढ़ता से चाहते। असंख्य तक गिन जाइए अंत में यही निकलेगा कि सब एक की माया है। हमारे यहाँ पंचपरमेश्वर प्रसिद्ध है सो बहुत ठीक है।

पाँच मनुष्य एक मत हो के जिस बात को करें उसे मानो सर्वशक्तिमान आप कर रहा है। ऐसा कोई काम नहीं है जो बहुतों की एकता से न हो सके। चारि जने चारिहू दिशा से एकचित हैव कै मेरू को हलाय कै उखारें तो उखरि जाय, पर जिसके भाग सुख नहीं है उसके समझ में, एकता क्या है, कभी आवैहीगा नहीं। समझ में भी आवैगा तौ बर्ताव में लाना कठिन है। नहीं तो जमात से करामात होती है। आपके पास विद्या, बल, धन, बुद्धि कुछ भी न हो, पर एका हो तो सब हो सकता है। वह देश धन्य है जहाँ एक्य की प्रतिष्ठा हो। बहुत-से लोग एक हो के पाप भी करें तो भी पुण्य फल पावैंगे। बहुत लोग एक हो के मर जायँ तो भी अनैक्यदूषित जीवन से अच्छा है।

एक का वर्णन एक मुँह से हम कहाँ तक करें। एक तो भगवान का नाम है - एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति और वह सर्वसामर्थी। फिर भला उसके किए क्या नहीं होता? उसकी श्रीमुख आज्ञा है कि 'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज'। शास्त्रार्थ की बड़ी गुंजाइश है पर हम तो प्रत्यक्ष प्रमाण से कह सकते हैं कि आप एक हो के देख लीजिए कि सब कुछ हो सकता है या नहीं। पाठक! क्या तुम्हें सदा 'ब्राह्मण' के मस्तक पर एक का चिह्न देख के उसका महत्तव कुछ अनुभव होता है? तौ फिर क्यों नहीं सब झगड़े छोड़ के सत चित्त से एक की शरण होते? क्यों नहीं एक होने और एक करने का प्रयत्न करते?

एक सलाह

प्रतापनारायण मिश्र

हमारे मान्यवर, मित्र, 'पीयूषप्रवाह' संपादक, साहित्याचार्य पंडित अंबिकादत्त व्यास महोदय पूछते हैं कि हिंदी भाषा में 'में से के' आदि विभक्ति चिह्न शब्दों के साथ मिला के लिखने चाहिए अथवा अलग। हमारी समझ में अलग ही अलग लिखना ठीक है, क्योंकि एक तो यह व्यासजी ही के कथनानुसार 'स्वतंत्र विभक्ति नामक अव्यय है' तथा इनकी उत्पत्ति भिन्न शब्दों ही से है, जैसे - मध्यम, मज्झम्, माँझ, मधि, माँहि, महिं, में इत्यादि, दूसरे अंगरेजी, फारसी, अरबी आदि जितनी भाषा हिंदुस्तान में प्रचलित हैं उनमें प्रायः सभी के मध्य विभक्तिसूचक शब्द प्रथक रहते हैं और भाग्य की बात न्यारी है नहीं तो हिंदी किसी बात में किसी से कम नहीं है।

इससे उसके अधिकार की समता दिखलाने के लिए यह लिखना अच्छा है कि संस्कृत में ऐसा नहीं होता, सो उसकी बराबरी करने का किसी भाषा को अधिकार नहीं है, फिर हिंदी ही उसका मुँह चिढ़ा के बेअदवी क्यों करे? निदान हमें व्यासजी की इस बात में कोई आपत्ति नहीं है।

इधर अपने भाषाविज्ञ मित्रों से एक सम्मति हमें भी लेनी है, अर्थात् हमारी देवनागरी में यह गुण सबसे श्रेष्ठ है कि चाहे जिस भाषा का जो शब्द हो इसमें शुद्ध-शुद्ध लिखा पढ़ा जा सकता है। अरबी के ऐऩकाफ़ख़ेआदि थोड़े से अक्षर यद्यपि अ क ख आदि से अलग नहीं हैं, न हिंदी में यों ही साधारण रीति से लिखे जाने पर कोई भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं, पर यत उनका उच्चारण अपनी भाषा में कुछ विलक्षणता रखता है। अस्मात् हमारे यहाँ भी उस विलक्षणता की कसर निकाल डालने के लिए अक्षरों के नीचे बिंदु लगाने की रीति रख ली गई है। किंतु अभी अंगरेजी वाली वी ट के शुद्ध उच्चारण कोई चिह्न नहीं नियत किया गया। यह क्यों? वाइसराय और विक्टर आदि शब्द यद्यपि हम लोग यवर्गी व अथवा पवर्गी ब से लिख के काम चला लेते हैं, यों ही हमारे बंगाली तथा गुजराती भाई भ से लिख लेते हैं और कोई हानि नहीं भी होती, किंतु अंगरेजी के रसिक यदि शुद्ध उच्चारण न होने का दोष लगावैं तो एक रीति से लगा सकते हैं, क्योंकि यह अक्षर व और ब दोनों से कुछ विलक्षणता के साथ ऊपर वाले दाँतों को नीचे के होंठ में लगा के बोला जाता है।

इसकी थोड़ी सी कसर निकाल डालने के लिए हमारी समझ में यदि ब के नीचे बिंदु लगाने की प्रथा कर ली जाए तो क्या बुराई है? यों ही फारसी में एक अक्षर जे है जिसका उच्चारण श के स्थान से होता है। अंगरेजी में भी प्लेजर आदि शब्द इसी प्रकार से उच्चरित होते हैं। इसके शुद्धोच्चारण के हेतु यदि 'ज' के नीचे तीन बिंदु लगाने की रीति नियत कर ली जाय तो बस दुनिया भर के शब्दों को शुद्ध लिख पढ़ लेने में रत्ती भर कसर न रहेगी, पर यदि हमारे भाषावेत्तागण मंजूर करें।

क्या लिखैं

प्रतापनारायण मिश्र

यदि हम यह प्रश्न किसी दूसरे से करैं तो छुटते ही यह उत्तर मिलैगा कि तुम्हें हिंदुस्तान और इंग्लिस्तान के सहृदय लोग सुलेखक समझते हैं, फिर इसका क्या पूछना, जो चाहो लिख मारो, पढ़ने वाले प्रसन्न ही होंगे। किंतु यह उत्तर ठीक

नहीं है क्योंकि लिखने का मुख्य प्रयोजन यह होता है कि जिस उद्देश्य से लिखा जाय उसकी कुछ सिद्धि देखने में आवै। सो उसके स्थान पर यहाँ जिनसे सिद्धि की आशा की जाती है उनके दर्शन ही दुर्लभ हैं। जहाँ श्री हरिश्चंद्र सरीखे सुकवि और सुलेखक शिरोमणि के लिखने की यह कदर है कि बीस कोटि हिंदुओं में से सौ पचास भी ऐसे न मिले कि हरिश्चंद्र कला का उचित मूल्य देकर पढ़ तो लिया करते, करना धरना गया भाड़ में फिर भला वहाँ हम क्या आशा कर सकते हैं कि हमारा लिखना कभी सफल होगा। जहाँ सफलता के आश्रयदाताओं ही का अकाल नहीं तो महा महँगी अवश्य है वहाँ सफलता की आशा कैसी? हाँ, यदि इसको सफलता मान लीजिए तो बात न्यारी है कि राजनैतिक विषयों को छेड़छाड़ करके राजपुरुषों की आँख में खटकते रहना, सामाजिक विषयों की चर्चा करके पुराने ढंग वाले बुड्ढों की गालियाँ सहना, सुचाल का नाम ले के मनमौजियों का बैरी बनना, और धर्म्म की कथा कह के नए मतवालों के साथ रंड़हाव पुतहाव मोल लेना, प्राचीन रीति नीति की उत्तमता दिखला के बिलायती दिमाग वालों में ओल्डफूल कहलाना इत्यादि, यदि यही सफलता है तो निष्फलता और दुष्फलता किसे कहते हैं? इसी से पूछना पड़ता है कि क्या लिखैं? आप कहिएगा, सब झगड़े छोड़ कर अपने प्रेम-सिद्धांत ही के गीत क्यों नहीं गाते। पर उसके समझने वाले हम कहाँ से लावैं, परमेश्वर के दर्शन भी दुर्लभ हैं, रहे संसारिक प्रेमपात्र, उनका यह हाल कि शिर काट के सामने रख दीजिए और उस पर चरण स्पर्श के लिए निवेदन कीजिए तौ भी साफ इनकार अथवा बनावटी ही इकरार होगा। फिर क्या प्रेम सिद्धांत साधारण लोगों के सामने प्रकाश करने योग्य है जिनमें 'बोद्धारोमत्सरग्रस्ताः प्रभवस्मयदूषिताः अबोधोपहताश्चान्ये' का प्रत्यक्ष प्रमाण विद्यमान है। हा प्रेमदेव! तुम हमारे श्मशान समान सुनसान मनोमंदिर में विराजमान होकर संसार को अपनी महिमा क्या दिखा सकते हो? हम तुम्हें कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुसमर्थ मानते हैं पर जब देखते हैं कि हमारा अपवित्र मुख तुम्हारा नाम लेने योग्य भी नहीं है, यदि बेहयाई से तुम्हारी चर्चा भी करें तो फल यह देखते हैं कि मुख से प्रेम का शब्द निकलते ही देर होती है किंतु पागल निकम्मा बेशर्म बेधर्म इत्यादि की पदवी प्राप्त होते विलंब नहीं लगता। भला ऐसी दशा में प्रेम का यश गाना अपनी निंदा कराना और दूसरों का पाषाण हृदयत्व के लिए उत्तेजित करना ही है कि और कुछ? यदि यह भी अंगीकार कर लें तो उस लोकातीत अनिर्वचनीय के विषय में लिखें ही क्या? फिर बताइए कि हम क्या लिखें? ब्रहाज्ञान छौंके तो आशा है कि पाठकगण स्वयं ब्रह्म बन-बन कर

कर्तव्याकर्तव्य की चिंता से मुक्त हो जाएँगे। किंतु साथ ही गृह कुटुंबादि की ममता से भी वंचित हो बैठेंगे जो अपने और पराए सुख का मूल है। यह न हुवा तो मनुष्य में औ पाषाण खंड में भेद ही क्या? फिर भला चलते-फिरते कर्तव्यपालन समर्थ प्राणी को अकर्ता उपभोक्ता बना बैठने का पाप किसको होगा? यदि 'स्वार्थे समुद्धरेत्प्राज्ञः' का मंत्र लेकर केवल हुजूरों की हाँ में हाँ मिलाया करें अथवा रुपए वालों को बात-बात में धर्ममूर्ति धर्म्मामावतार बनाया करें व भोलेभाले भलेमानसों को गीदड़-भभकी दिखाया करें तो धन और खिताबों की कमी न रहेगी, किंतु हृदय नर्कमय हो जाएगा, उसे क्यों कर धैर्य प्रदान करेंगे? ऐसी-ऐसी अनेक बातें हैं जिन पर लेखनी को कष्ट देने से न अपना काम निकलता दिखाई देता है न पराया, इसी से जब सोचते हैं तब चित्त यही कहने लगता है कि क्या लिखैं? यों कलम ले के लिखने बैठ जाते हैं तो विषय आजकल के नौकरी के उम्मीदवारों की तरह एक के ठौर अनेक हाजिर हो जाते हैं। पर जब उनकी विवेचना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि जिन बातों को बीसियों बार बीसियों प्रकार, हम ऐसे बीसियों लिक्खाड़, लिख चुके हैं उन्हें बार-बार क्या लिखें? यदि मित्रों से पूछते हैं कि क्या लिखें तो जै मुँह तै बातैं सुनने में आती हैं। सब के सब अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग ले बैठते हैं जिनमें यह संभावना तो दूर रही कि दूसरों को रुचि होगी, कभी-कभी लिखने वाले ही का जी नहीं भरता। फिर क्या लिखैं? लोग कहते हैं कि लिखा पढ़ी बनाए रखने से देश और जाति का सुधार होता है। पर हम समझते हैं यह भ्रम है। जिस देश और जाति को बड़े-बड़े रिषियों मुनियों कवियों के बड़े-बड़े ग्रंथ नहीं सुधार सकते उसे हम क्या सुधारेंगे? जो लोग स्वयं सुधरे हैं उन्हें हमारे लिखने की आवश्यकता क्या है और जिन्हें सुधरने बिगड़ने का ज्ञान ही नहीं है उनके लिए लिखना न लिखना बराबर है, फिर क्या लिखैं? और न लिखैं तो हाथों का सनीचर कैसे उतरे! जब महीना आता है तब बिना लिखे मन नहीं मानता। यह जानते हैं कि हिंदी के कदरदान इतने भी नहीं हैं कि जिनकी बिनती में एक मिनट की भी देर लगे और लेटर पेपर का आधा पृष्ठ भी भरा जा सके। इसी से जो कोई उत्तम से उत्तम पुस्तक व पत्र प्रकाशित करता है वह अंत में निराश ही होता है अथवा हमारी तरह किसी सज्जन सुशील सहृदय मित्र के माथे देता है। पर क्या कीजिए, लत से लाचारी है, उसी के पीछे जहाँ और हानि तथा कष्ट उठाने पड़ते हैं वहाँ यह चिंता भी चढ़ाई रखनी पड़ती है कि क्या लिखें? किंतु जब इसकी छान बिनान करते हैं तो ऊपर लिखी हुई अड़चनें आ पड़ती

हैं। इसी से हमने सिद्धांत कर लिया है कि कुछ सोचौं न किसी से पूछैं, जब जैसी तरंग आ जाय तब तैसा लिख मारैं। उससे कोई रीझै तो वाह-वाह, खीझे तो वाह-वाह। किसी की बने तो बला से बिगड़े तो बला से। हमने न दुनिया भर के सुधार बिगाड़ का ठेका लिया है न विश्वमोहन का मंत्र सिद्ध किया है। हाँ, लिखने का रोग जगा बैठे हैं, उसके लिए सोचा विचारी अथवा पूछताछ क्या कि क्या लिखैं क्या न लिखैं?

कांग्रेस की जय

प्रतापनारायण मिश्र

श्रीयुत भीम जो जिस समय प्रयागराज में आकर सुशोभित हुए थे, इस वाक्य को प्रेमपूर्ण हो के कई बेर उच्चारण किया था। कांग्रेस के मध्य में भी सैकड़ों सज्जनों के मुख से यही मंत्र उच्चारित हुवा था और अंत में इलाहाबाद स्टेशन पर तो यह शब्द आकाश को भेद गए थे! अहाहा! आज तक हमारे कानों और प्रानों में यही ध्वनि गूँज रही है, और रह रह के मुँ से यही निकलता है कि 'कांग्रेस की जय'! क्यों न हो, कांग्रेस साक्षात् दुर्गा जी का रूप है क्योंकि वह देशहितैषी देवप्रकृति के लोगों की स्नेहशक्ति से आविर्भूत हुई है, 'देवानां दिव्य गुण विशिष्टानां तेजो राशि समुद्भवा' है! फिर हम ब्राह्मण होके इसकी जय क्यों न बोलें। प्रत्यक्ष प्रभाव यही देख लीजिए कि इसके द्वेषियों ने अपनी सामर्थ्य भर झूठ, प्रपंच, छल, कपट, कोई बात उठा न रक्खी थी, पर 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु द्वगुण कपि रूप दिखावा।।' अंत में 'सत्यमेव जयते' इस वेद वाक्य के अनुसार कांग्रेस का अधिवेशन हुवा, और ऐसा हुवा जैसी आसा न थी।

स्वयं कार्याध्यक्ष लोग कहते थे कि हमने समझा था बड़ी हद्द हजार डेलीगेट आवेंगे, उसके ठौर पर डेढ़ हजार मौजूद हैं। धन्य है लोग समझे थे कि मुसलमान उसमें कभी शरीक न होंगे, सो एक से एक प्रतिष्ठित विद्वान, धनिक मुसलमाँ अनुमान तीन सौ के विराजमान थे। बरंच बाजे नगरों से हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान ही अधिक आए थे। भला इन बातों को आँखों देख के वा विश्वासपात्रों से सुन के कौन न कह उठेगा कि 'कांग्रेस की जय'। सच तो यह है कि तीर्थराज में ऐसा समागम शायद भारद्वाज बाबा के समय में हुवा हो, बीच में तो सुनने में नहीं आया। यों कुंभादि के मेलों में हजारों की भीड़ होती है 'पर कहाँ रेशम के लच्छे कहाँ झौवा भर झोथर' कहाँ कुपढ़ उजड्ड वैरागियों के जमघट, कहाँ श्री अयोध्यानाथ, श्री मदन मोहन, श्री रामपाल, उमेश, सुरेंद्र

सरीखों का देव समाज! आहा! इस अवसर पर जिसने प्रयाग की शोभा न देखी उसने कुछ न किया। लूथर साहब के हाते का नाम हमने प्रेमनगर रखा था क्योंकि लड़के, बूढ़े, हिंदू, मुसलमान, जैन, क्रिस्तान, पश्चिमोत्तर देशी, बंगाली, गुजराती, सिंधी, मद्रासी, फारसी, इंगलिस्तानी, सब के सब प्रेम से भरे हुए दृष्टि आते थे।

किसी प्रकार की कोई वस्तु किसी समय आप को चाहनी हो, किसी कार्यकर्ता से कह दीजिए बस मानों कल की लाई धरी है! सबके एक से पट मंदिर (डेरे), सबका एक विचार (देशहित), अमोद-प्रमोद, संलाप-समागम के सिवा कुछ काम नहीं। व्याख्यानालय में पहुँचने के सिवा कोई चिंता नहीं, हजारों की वस्तु अकेले डेरे में डाल आइए, सुई तक खो जाने का डर नहीं, नहाने खाने सोने बैठने सैर करने आदि की किसी सामग्री का अभाव नहीं! तनिक सिर भी दुखे, बैद, हकीम, डाक्टर सब उपस्थित हैं। पास ही कांग्रेस के बाजार में दुनिया भर की चीजें ले लीजिए!

पास ही तंबू के तले दुनिया भर के समाचार (अखबार) जान लीजिए! पास ही डाक के बंबे (लेटरबॉक्स) में लिख के डाल दीजिए, आपका सारा हाल आपके संबंधियों को पहुँच जाएगा। उसके पास हो डेरे में चले जाइए, अपने घर नगर का वृत्त जान लीजिए। जहाँ व्याख्यान होते थे वुह स्थान ऐसा सुदृश्य और नाना वस्तु तथा एक रंग रूप की कुर्सियों से सुसज्जित था कि देखते ही बनता था। विशेषत: महात्मा ह्यूम इत्यादि पुरुषरत्नों के आने पर तथा किसी के उत्तम व्याख्यान में कोई चीज की बात आ जाने पर करतल ध्वनि और आनंद ध्वनि के एवं नाना रंग रूमालनर्तन की शोभा देख के यही ज्ञात होता था कि हम सुरराज के मंदिर में देव समूह के मध्य बैठे हुए आनंद समुद्र की लहरें ले रहे हैं। 26 से 29 ता. तक कांग्रेस का महाधिवेशन रहा।

इस अवसर में प्रतिदिन प्रतिछिन आनंद की वृद्धि रही। पर वुह आनंद केवल भारतभक्तों के भाग्य में था। इतर लोग तो जो वहाँ जा भी पहुँचे तो कोरे ही आए! एक दिन एक मियाँ साहब किसी से टिकट माँग के हमारी प्रेम छावनी के भीतर पहुँच भी गए, पर इधर उधर अपनी अंटीबाजी फैलाने से बाज न आए। अत: दूध की मक्खी की भाँति दूर कर दिए गए! 25 ता. को हमारे राजा शिवप्रसाद साहब भी प्रयाग जी में आए, और डेलीगेट होने का दावा किया, बरंच फीस भी जमा कर दी, एवं अपने पूर्व कृत्यों का अनुताप भी प्रकाशित किया। पर किसी को विश्वास न हुवा।

विश्वास तो तब होता जब किसी देशहित के काम में शरीक हुए होते। लोग नाना प्रकार के तर्क वितर्क करने लगे। किसी ने कहा – 'राज जुवति गति जानि न जाई' किसी ने कहा, चतुर तो हई हैं, कौन जाने – 'चौथे पन नृप कानन जाहीं' का उदाहरण दिखावें। किसी ने कहा, अभी यही तो कांग्रेस वालों को दंडनीय ठहराते थे, एकबारगी क्यों कर बदल जायँगे। जरूर कुछ दाल में काला है। इनका यहाँ आना भेद से खाली नहीं है। अवश्य 'कोई माशूक है इस परदए जंगारी में'। अस्तु, बहुत कहने सुनने से मिला लिए गए। पर 26 तारीख को कुछ बोले चाले नहीं। इससे सबको निश्चय सा हो गया कि दिन भर का भूला साँझ को घर आ गया होगा। पर 27 तारीख को लीला दिखाना आरंभ ही तो किया!

आप जानते हैं शिवजी गरलकंठ तो हई हैं। उसकी झार हम मनुष्यों से कहाँ सही जाती है। आप बोलते जाते थे, लोग हिचकी ले ले के रद्द करते जाते थे! अंत में जब श्रोतागण बिलकुल उकता गए तो 'गच्छ गच्छ सुर श्रेष्ठ' वाला मंत्र पढ़ने लगे। अस्तु, आप विराजे और हमारे परमाचार्य (सभापति) श्रीयुत जार्जयूल तथा श्री नवलबिहारी बाजपेयीजी ने उस विष की शांति के लिए मंत्रपाठ किए। दूसरे दिन हमारे सी.एस.आई. महाशय अपनी काशी को पधार गए और कांग्रेस रूपी कलानिधि का ग्रहण छूटा! सबको आनंद हुवा, जिसका वर्णन करने को बड़ा सा ग्रंथ चाहिए।

जहाँ स्कूल के छात्रों तक को दशभक्ति का इतना जोश था कि रेल पर से डेलीगेटों को बड़ी प्रीति के साथ लाते थे, और डेरों पर सारा प्रबंध बड़ी उत्तमता से करते थे, तथा चपरास पहिन-पहिन के व्याख्यान मंदिर का इंतजाम करते थे, और प्रतिपल प्रेम प्रमत्त रहते थे, प्रतिनिधियों की सुश्रूषा में ही अपना गौरव समझते थे, (परमेश्वर करे कि हमारी राज राजेश्वरी इन वालंटियरों को शीघ्र वालंटियर बनावें और अपनी कीर्ति तथा हमारी राजभक्ति बढ़ावें) वहाँ दूसरों के आनंद का क्या कहना!

तीस तारीख को सामाजिक व्याख्यान हुए थे और उसी दिन बहुत से लोग विदा भी हो गए थे। उस दिन अवश्य सब सहृदयों को वैसा ही खेद हुवा होगा जैसा रामचंद्रजी को चित्रकूट में छोड़ के श्री पादुका लिए हुए भरत जी के साथ अयोध्यावासियों को घर लौटते समय हुवा था! पर हम उसका वर्णन करके अपने पाठकों को वियोग कथा नहीं सुनाया चाहते। 1889 में बंबई की कांग्रेस के लिए सन्नद्ध होने का अनुरोध और दूसरे अंक में प्रयाग की कांग्रेस के कर्तव्य सुनाने का इकरार करके इस अध्याय को यहीं समाप्त करते हैं। बोलो 'कांग्रेस की जै!' बोलेगा सो निहाल होगा। बोलो 'महारानी विक्टोरिया की जै!'

गुप्त ठग

प्रतापनारायण मिश्र

कपड़ा लत्ता चेहरा मुहरा देखो तो भले मानसों का सा। बातें सुनो तो साक्षात् युधिष्ठिर जी का अवतार। 'झूठ बोलना और और बराबर है' यह जिनके तकिया कलाम हैं, 'रामौराम पर' 'धर्मौधरम पर' 'जनेऊ कसम' 'राम धै' 'परमेसुर जानै' 'जो तुम्हारे ईमान में आवै' 'अरै भैया रुपया पैसा हाथ का मैल है, धरम नहीं तौ कुछ भी नहीं' – दिन भर यही बातैं बात-बात पर निकलैंगी। गंगाजी के दर्शन दोनों पहर करैंगे, मंदिर में घंटों घंटा हिलावैंगे, कथा में बैठे तो श्लोक-श्लोक पर आँसू चले आते हैं। कोई जाने धरती के खंभ, धर्म का पुतला, प्रेम का रूप, जो हैं सो बस आप ही हैं। पर कौड़ी-कौड़ी के लिए सब सतजुग वाली बातैं बिलैमान हो जाती हैं। दुकान पर आये नहीं कि 'या महादेव बाबा भेज तौ कोई भोला भाला आँख का अंधा गाँठ का पूरा।'

अ ह ह ह ह बलिहारी-बलिहारी बगुला भगत, बलिहारी! ध्यान करते देखै सो तो जानै कि ब्रह्म से तन्मय हो रहे हैं पर मछली निकली की गप। जानते होंगे कि कोई जानता नहीं, यह नहीं समझते 'पापु अँटारी चढ़ि कै गोहरावत है।' भला यार लोगों से भी कुछ छिपती है! यार बुरा मानो चाहै भला पर कहैंगे वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो। जब तक आचरण न सुधरैंगे तब तक यह सब भगतई और भलमनसी कौड़ी काम की नहीं है। अपने मुँह चाहो जो बने रहो जानि परो जब जइहौ कचहरी। 'फक्कड़ भाई यह किस पर फबतियाँ हो रही हैं?' दो एक थोड़ी हैं, हम कहते जायँ तुम गिन चलो। पहिले चलो नाज की मंडी। बैपारी राम तो जानते हैं भाई अच्छी सोने की चिड़िया हाथ हाथ लगी है, रुपया उधार दिया है जो माँगते तक नहीं, आओ तो कुछ नजर करैं, जावों तो कुछ भेट धरैं, जब तक रहो आँखों पर रक्खैं, बात-बात पर कहैं कि 'हमार तुम्हार घर का वास्ता है।' यह नहीं समझते कि 'बनिया का बेटा कुछ तो समझकर फिसल पड़ा।

भला रुपए, की आढ़त पर यह धम-धम कैसे सहे जा सकते हैं, वहाँ कनवाँ बधिया मासा चलता है। ब्योपारी से कहा बीस सेर बिका और ग्राहक से इशारा किया 'कनवाँ', बस 'खग जानै खग ही की भाषा।' बिचारा गँवार ब्योपारी क्या जानै कि इस गूढ़ मंत्र का यह अर्थ है कि छँटाक रुपया तो अढ़तिया जी के बाप का हो गया। जहाँ कहा 'मासा' बस पौवा रुपया अलग ही अलग चित्त हुआ। यह तो ब्योपारी का माल बेचने का हतखंडा है। जब अपना माल बेचेंगे

तब बानगी और दिखाई तुलाय और दिया। 'गुरु यह तो विश्वासघात है!' अबे चुप! बनियाई के पेंच हैं उल्लू, कहीं तुलसी सोना डालै रोजगार होते हैं।

अब घी वाले की दुकान प देखो चलैं। ग्राहक के दिखाने को भंड़िया पर ताजा अरंड का पत्ता बँधा हुआ है, मानौं अभी दिहात से आया है। जहाँ खोल के देखा, घी क्या है घी का बाबा है, आँच दिखाते ही जानोगे। 'गुरु यह पहेली सी क्या कहि गए, घी का बाबा तो मट्ठे को कहते हैं क्योंकि मट्ठे से मक्खन और मक्खनी से घी होता है'। अबे ऐसा नहीं कहते, दैख तो कैसा घी धरा है। सच है, सच है, दानेदार नहीं बरुक दाने का जीव और घी का जीव एक हो गया है, तभी तो रंगत तक नहीं बदली। खासा भैंस का सा घी बना है।

भैंस का न सही यह लेव गाय का घी है। इसमें भी गुल्लू का तेल मिला होगा। हाय! इन रतन में जतन करने वालों की क्या दशा होगी नारायण! चलो-चलो ऐसा घी खाए बिना क्या डूबा जाता है। दूध खाया करैंगे। दूध वाले ही कौन दूध के धोये बैठे हैं, वहाँ भी 'सेरुक दूध अढ़ैयक पानी। धम्मक धम्मक होय मथानी'। की धैना है। उन्हें कुछ कम समझे हो, वह भी बकरी भेंड़ी का दूध मिला-मिला के एक-एक के दो-दो करते हैं। तभी तो घी दूध का गुन जाता रहा। हाय! इन ठगों की खबर सर्कार क्यों नहीं लेती कि अभी दूध पानी का पानी हो जाए। सर्कार को क्या पड़ी है कि छोटी बातों में अपना समय खोवै, सर्कार को अपने लाइसेंस टैक्स से काम है कि तुम्हारे धंधों से? फिर क्या ग्राक लोग नहीं जानते कि राक्षसों के मारे गाय भैंस तो बचने ही नहीं पातीं घी दूध आवै कहाँ से?

ऐसा ही शरीर रक्षा करनी हो तो हिंदू भाई यदि अधिक न हो सके तो एक गाय पाल ही लें, जिसमें शरीर रक्षा, स्वादिष्ट भोजन और धर्म तीनों मिलैं। सर्कार से किस-किस बात की शिकायत करते फिरोगे। यहाँ तो यह कहावत हो गई है कि 'पेशे में सभी चोरी करते हैं' हलवाई की दुकान पर जाओ, सब चीज ताजी घी की बनी तैयार है, पर खाते ही जानोगे। जो तीन ही दिन की हो तहाँ तक ही कुशल समझो। सेर भर घी में पाव भर तेल मिला हो तो तब तक तो जानो बड़े ईमानदार का सौदा है नहीं तो शुद्ध एक वर्धा 'तेल गले मढ़ैगा'। अत्तार के यहाँ बरषों की सड़ी दवाएँ, सुंदर ऊँख का शहद, खालिस शिरे का शर्बत और गंगा जी का अरक तो एक साधारण बात है। संबत् 1936 में बीमारी बहुत फैली थी, तब बहुतेरे महापुरुषों ने लसोरे की गुठली पर अमरस चिपकाय के आलूबुखारे बनाए थे और बड़ी कठिनाई से पैसा के तीन-तीन देते थे। क्यों न देश का देश निर्वीज हो जाए?

रोगी राम कहते हैं, हकीम जी की दवा से फायदा नहीं होता। फायदा कहाँ से हो, दवा तो यार ही लोगों के यहाँ से आवेगी। हाय! यह भी तो नहीं हो सकता कि सब काम अपने हाथ ही से किए जायँ। संसार में काई किसी का विश्वास न करै तो भी तो काम नहीं चल सकता। पर विश्वास कीजिए किसका, यहाँ तो वही लेखा है कि 'हुशियार यारे जानी यह दस्त है ठगों का। याँ टुक निगाह चूकी और माल दोस्तों का'। 'सबको ठग बनाते हो? ऐसा न हो कि कोई बिगड़ जाए।' अरे भाई ऐसे डरने लगते तो यह काम ही क्यों मुड़ियाते? यहाँ तो खरी कहना माथे के अक्षर ठहरे। कुछ हो हमसे तो बिना कहे नहीं रहा जाता कि अपने मन के धन के लिए ऐसे अनर्थ करना कि दूसरों की तंदुरुस्ती (स्वास्थ्य) में भी बाधा लगै, केवल लोभी का नहीं बरंच महा अधम का काम है।

इसमें परलोक ही अकेला नहीं बिगड़ता, दुनिया में भी साख जाती है। अन्य देशी लोग बेईमान बनते हैं। रोजगार जैसा सावधानी और ईमानदारी से चलता है वैसा इन अँधेरों से सपने में न चल सकेगा। हमेशा तीन खाओगे तेरह की भूख बनी रहेगी। विश्वास न हो तो जैसे अपनी रीति पर अब तक चले हो वैसे ही जी कड़ा करके कुछ दिन हमारी बूटी का भी सेवन करो तो देखो कैसा मजा होता है, कैसे-कैसे लाभ उठाते हो। हम ब्राह्मण हैं। हित की कहते हैं। हमारी मानोगे तो धरम मूरत धरमा औतार हो जाओगे नहीं तो कोई अंगरेज सुन पावैगा तो 'डेम फूल' बना के मनवावैगा। वह मानना और तरह का होगा, बस आगे तुम जानो तुम्हारा काम जानै।

छै! छै!! छै!!!

प्रतापनारायण मिश्र

हुश्त! मनहूस कहीं का! वाह रे तेरी छै!

हमारी छै काहे की, तेरी हो। जानैं न बूझैं कठोता ले के जूझैं। कुछ समझता भी है हम क्या कहते हैं कि मुँही पकड़ने दौड़ता है?

सब समझते हैं। बस, चुप रहो!

समझते हो! अपना सिर! समझते हैं! भला बता तो हम क्या कहेंगे?

वाह! हम कोई अंतरजामी हैं? हाँ अंदाज से जानते हैं, संख्यातार लिखते-लिखते दिमाग में गरमी चढ़ गयी है इसी से बार-बार छै की गिनती याद आती है।

फिर! इसी से क्या बुराई है? एक रात नाच देखने पर तो दूसरे दिन सोते-जागते, ऊँघते-पूँछते कानों में छुन-छुन की-सी आवाज गूँजती रहती है। हम महीनों से छै छै छै सुन रहे हैं। फिर हमारे मुँह से कैसे न निकले।

महीनों से! यह पहेली-सी क्या कह गये? भई सचमुच हम न समझे थे। हमारी जान में तो छै वही है जो पाँच के पीछे और सात के पहिले गिनती में आया करते हैं। सो सभी जानते हैं कि नाद में छै राग होते हैं, वेद में छै अंग होते हैं, विद्या में छै शास्त्र होते हैं, देवताओं के स्वामी कार्तिकजी के छै मुख होते हैं, पितरों में छै पिंडाधिकारी होते हैं, कन्यकुब्जों में छै घर होते हैं।

तुम्हारी ल्यौंड़ी पर छै गुद्दे होते हैं। हें। चले हैं पंडिताई छौंकने! अब जिन्हें तू कहता है, होते हैं, उन्हें कहना चाहिए होते थे। अब पुराने जमाने की सड़ी बातों पर हमारे काले साहब सौक पाँव होते हैं इससे समझ रख कि देवता-पितर, वेद-सवेद सब कहने-भर को होते हवाते हैं। सो भी यकीन है कि कुछ दिन में नई रोशनी वाले लंप की बू से और चुरुट की चिराइँध से भागभूग जायँगे। तब बस चारों तरफ देख लेना कि प्रात:काल खटिया से उठते ही रकाबी पर छै अंडे होते हैं, साँझ को पूरी बोतल-भर के केवल छै डोस होते हैं स्नान के समय बकस में साबुन के छै चकत्ते होते हैं, सैर के वक्त कोट में छै बटन होते हैं, बातें करने में अंग-अंग से छै मोशन होते हैं, लेट रहने पर हाथ-मुँह चाटने को छै कुत्ते होते हैं! अब समझे?

कुछ भी नहीं समझे! परमेश्वर न समझावै! तुम्हीं ने समझ के क्या किया?

अब और क्या करें? तुम ऐसों को बात-बात में बना छोड़ते हैं। इतना थोड़ा हम क्या कहते थे तुम ले दौड़े कहाँ। इसी से तो कहते हैं कि यारों की बातों में टोंका न कर। न जाने किस तरंग में क्या कह उठते हैं।

अच्छा बाबा! हारे! पर जी में आवै तो बतला दो कि आप के छै का क्या मतलब है।

यह माना! इस तरह हारी मान के पूछो तो कुछ दिन में कुछ हो जाओ। लो सुनो, हमारे छै साहब गिनती वाले छै नहीं हैं।

वाह! यह अच्छा उड़ान भरा! तो फिर बोतल, अंडे और बटन क्यों उलट डाले?

तुम्हारी अक्किल देखने को! और यों न सही तो ऐसा समझ लो कि मरदों की जबान और गाड़ी का पहिया फिरता ही रहता है। अब भी क्या वह जमाना है कि चाहे धरती लौट जाय पर वचन न पलटे। अब तो अकलमंदी इसी में

समझी जाती है कि मन में कुछ हो, दूसरों को कुछ समझाया जाए और मौका मिलने पर अपने लिखे को साफ झुठला दे। फिर ऐसे कलजुग में पैदा हो के हम दुअर्थी बात निकाल बैठे तो क्या बुरा करते हैं?

नहीं महात्मा! आप भला बुराई करेंगे! आप तो जो कुछ करें वही धर्म!

बस-बस! अब तुम समझ गए! जिसे खुशामद करना आता है वही इस जुग का समझदार है और उसी के सब काम बनते हैं, उसी से सब राजी रहते हैं हम भी इतने खुश हुए है कि अब बिना बतलाए नहीं रह जाता। अच्छा तो सुनो, यह 'छै' वास्तव में संस्कृत वाले 'क्षय' हैं और बंगाल में बानरजी तथा पंजाब के सिंहजी के मुख में जा के 'खय' अथवा 'खै' हो जाते हैं। पर हमारे यहाँ वो छै या छा (नाजुक तन और नाजुक दिमाग) पश्चिमोत्तरदेशी जी न हाथों-पैरों से कुछ कर-धर सकते हैं, न मस्तिष्क से काम ले सकते हैं। केवल मजेदार मीठी-मीठी बातें बनाना जानते हैं। उन्होंने देखा कि संस्कृत की क्ष बोलने में कठिन है और बंग भाषा तथा पंचनदीय भाषा की 'ख' - 'क्ष' उच्चारण में कर्कश है तथा कई शब्दों में और का और अर्थ सूचित करती है। इससे छै कहना ठीक होगा जो बोलने में सहज है एवं छैल-छबीलियों का छाती लगने के समेय छिन-छिन पर छड़कना याद दिलाता है। कुछ समझे?

हाँ इतना समझे कि आपकी बोली में 'छै' का अर्थ छः की संख्या और नाश होना दोनों है। आपने कहा था कि हम महीनों से छै-छै सुन रहे हैं। इसका क्या अभिप्राय है?

हैं! यह मैंने कब कहा था?

भैया, यह अदालत नहीं है कि झूठ बोले बिना काम न चले। यहाँ तो हमीं तुम हैं। फिर क्यों कह कहाय से इनकार करते हो?

वाह! अभ्यास बनाए रखना कुछ बुरी बात है? हमने कभी नहीं कहा, खुदा कसम नहीं कहा! राम दुहाई नहीं कहा! और कहा भी हो तो बिना खुशामद कराए न बतावैंगे!

अच्छा साहब! आप एक ही हैं। बाप बड़े वह हैं! आप जो हैं सो हैं! आप अपने आगे सानी नहीं रखते! अब तो बतलाइएगा।

खैर, तो कान फटफटा के सुनो बगले की तरह ध्यान लगा के सुनो-समझो। कचटियावलिन जो है सो राम आसरे ते जा समय के बिखै रामलीला का आरंभ होता है गोविंदाय नमोनमः वा समय के बिखै जो है सौ गाँवन-गाँवन नगरन-नगरन के बिखै आनंद करि-करि कै जै औ छै का आगमन

होता है जो है सो गोविंदाय नमो नमः। कहो कैसे? तो जा समै के बिखै रामचंद्र कै सवारी निकरति हैं गोविंदाय नमो नमः, वा समय के बिखै, जहाँ कौन्यों रामादल कै वीर अथवा कौन्यौं तमासगीर के मुख ते जो है सो यतरा निकरि गा गोविंदाय नमो नमः कि बोलौ राजा रामचंद्र की जै, अथवा - बोलैगा सो निहाल होगा, बोल दे रजा आ आ आ आ रा आ म चन्द्र की ईई जै! हुअँई चारिउ कैती जै जै जै जै के धुनी छाय जाति है, गोविंदा, और जब रावण कै सवारी निकरति है, गोविं..., वा समै के बिखै जहाँ कोउ राच्छस जो है सो कहि देत है कि बोल रावन् जोधा कि जै! तौ कोऊ जै तौ नाहीं कहत, गोविंदा पै छै छै कै धुन छाय जाति है, गोविंदा...। और राच्छस नाहिंउ ब्वालै तुहुँ देखवैया जे हैं ते अपने छै छै करन लागत हैं, गोविंदा...।

या प्रकार सों कुँवार कै महीना माँ जो है सो जै के साथ छै को जन्म होत भयो गोविं...। अब समझौ! शब्द जो है सो सदा से अनादि है, गोविं..., जिनका बरसन व्याकरण रटत-रटत लाग हैं, गोविं..., औ जीविका तथा प्रतिष्ठा हिंदुनै के घर ते है जो है सो, औ जनम-भर कथै बाँचत है, गोविं..., वै हिंदी वाले का सहूर जो है सौ कबौ न होत भयौ, गोविं...।

यह तो गुरू सच कहत हौ! और ऊपर से तुर्रा यह कि यही लोक-परलोक के अगुवा हैं! यहीं हिंदुओं-भर के गुरू हैं। पर जाने दीजिए मतलब वाली कहिए।

तुम्हारी पागलों की-सी बकवाद से मतलब खब्त हो जाता है।

हैं! तौ हम पागल ठहरे। बस अब न बतलावें, जा!

नहीं महाराज! कृपानिधान! दयासिंधु! दीनबंधु! दास से तकसीर हुई! क्षमा कीजिए! इतना समझा दीजिए कि शब्द जितने हैं सब अनादि हैं इस न्यास से जै और छै अनादि हैं। इसके सिवा बरसों से लाहौर वाली देव समाज की सारी पुस्तकों पर देव धर्म की जै, सकल पाप की छै छापा जाता है। फिर जै और छै की उत्पत्ति कुँवार से क्यों कर मान लूँ?

हमारे कहने से मान ले, नहीं तो नास्तिक हो जाएगा और श्रद्धापूर्वक सुनता हौ तो सुन। अकेले शब्द ही अनादि नहीं है, सारा संसार अनादि है। इसे किसी ने बनाया-बुनाया नहीं है, यों ही लोग ईश्वर का नाम रख लेते हैं। पर आज कल के शिक्षितों का अधिकांश मत यही है कि सृष्टिकर्ता की जरूरत नहीं।

बस फिर जो कुछ है सब अनादि और अनंत है। पर बात जिन दिनों बहुत फैल जाती है वह उत्पन्न कहलाती है और जिसे बहुत थोड़े लोग जानते-मानते हैं वह नष्ट वा नष्टप्राय समझी जाती है। इस रीति से रामलीला के साथ 'छै'

की उत्पत्ति और कीर्तिकी पौर्णमासी को नाश मंतव्य है। क्योंकि रामलीला में रावण की छै का शब्द गूँजने लगता है और शत् पूर्णिमा तक बना रहता है। फिर उसी दिन से जुवा का आरंभ होता है तब रावण का नाम जाता रहता है। किंतु छै छै की चर्चा बनी रहती है। यहाँ तक कि दिवाली के दो-चार दिन इधर-उधर छै छै के सिवा कुछ सुनी नहीं पड़ता। खास करके जहाँ कि हाकिम प्रजा के त्योहारों के आमोद-प्रमोद के द्वेष न हुए वहाँ तो गली गली, घर घर, जन जन, को छै छै की सनक-सी चढ़ जाती है! छै! छै! यह छै! आ तो जा छै! सोरही में तो छै! नवकी मूठ में तो छै! फिरकी में तो छै!

क्या गरीब, क्या अमीर, क्या बच्चा, क्या बुढ्ढा, क्या पुरुष क्या स्त्री सभी के मुँह पर दिन-रात छै छै छै छै बसी रहती है। फिर दिवाली का मौसम टल जाने पर छै का प्राबल्य यद्यपि जाता रहता है किंतु दिठौनी इकादशी को हारे जुआरियों का अपील अर्थात् फिर जीतने की आशा पर खेल और कतकी को हाईकोर्ट अर्थात् अंतिम निर्धार जब तक नहीं हो जाता तब तक छै छै की छै नहीं होती। यद्यपि श्रेष्ठ द्यूतकारों के पवित्र मंदिरों में उसका बारहों मास बिहार होता रहता है, पर जन समुदाय का अधिकांश इन्हीं दिनों छै छै में विशेष रूप से मस्त रहता है।

इसमें हमें भी इसका थोड़ा-बहुत जाप कर लेना चाहिए। यदि बुराई है तो उनके लिए है जो लती हैं और घर के बनने-बिगड़ने का ध्यान नहीं रखते। पर त्योहार मनाना तथा पुरखों की रीति का पालन कर लेना कोई ऐब नहीं है। गृह कुटुंबादि के आवश्यक व्यय से उबरने पर थोड़ा-सा परिमित धन इष्ट मित्रों की प्रसन्नता संपादनार्थ इस बहाने भी उठ गया तो क्या हानि है? विलायती चीजों के बर्ताव से और सड़ी-सड़ी बातों के लिए कचहरी दौड़ने से लाखों रुपया विदेश को चला जाता है, उसका तो कोई ध्यान नहीं देता, पर होली, दिवाली में थोड़ा-सा मन बहलाने में पाप है! और उसी के लिए देशभाइयों को हँसना धर्म की दुम है!

अच्छा बाबा, हम जो कुछ हैं वही बने रहेंगे, किसी को बुरा लगे तो अपने कान बंद कर ले। पर हमें दिवाली के एक दिन पहिले एक दिन पीछे, यह कहने से न रोके कि छै छै छै!

अच्छा साहब छै सही, पर यह तो कहिए काहे की छै?

हाँ यह मन की बात पूछी है तो हम भी क्यों छिपावैं, कही डालें न! वर्षा के कारण अंतरिक्षस्थ गर्द-गुबार की छै। पर जिन घरों के किसी भाग में तारकोल

चुपड़ दिया जाय उनके आसपास के आने-जाने वालों की मस्तिष्क संबंधिनी शांति की छै। दिवाली का दिया चाटने से मक्खी मच्छर कीड़े पतंगों की छै! सरसों का तेल और आतिशबाजी का गंधक जलने से मलेरिया उत्पादक वायुदोष की छै! किंतु नए शौकीनों के द्वारा मट्टी का तेल जलने से नेत्र ज्योति और कूबते दिमागे की छै! सब राहें खुल जाने से देश-देशांतर में गमनागमन करने वाले व्यापारियों के हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने की छै। विशेषत: हलवाई और कुम्हारों तथा ठठेरों की बेकदरी की शिकायत की छै! लक्ष्मी पूजा के द्वारा पुरोहितों की बेराजगारी और यजमानी और यजमानी के पाप की छै! त्यौहारों की चिंता से गृहपतियों के अनुयोग की छै! घर शोभयमान हो जाने से सुघर घरनियों की अप्रसन्नता की छै।

खील-खिलौना, मिठाई पा जाने से बालकों के भिन्न-भिन्न करने की छै! जुवारियों की भूख-प्यास, सच्चाई-ईमानदारी, आपस के हेल-मेल, बरस-दिन के कमाय धन इत्यादि सबकी छै छै छै! ले इतने हमने बात का बतंगड़ बना के गिना दिए। एक बार तुम भी तो प्रेम से पूरित हो के गद्‌गद स्वर से कह दो महारानी विक्टोरिया की जै! और हिंदी हिंदू हिंदुस्तान के द्वेषियों की छै! छै!!छै!!!

छल (1)

प्रतापनारायण मिश्र

पुराने लोगों ने इस गुण को बुरा बतलाया है पर विचार कर देखिए तो जबकि लकार वर्णमाला भर का अमृत है, जिस शब्द में यह आता है उसे ललित लावन्यमय प्रलोभनपूर्ण बना देता है। संस्कृत में जयदेवजी का गीतगोविंद सबसे सलोना समझा जाता है, क्यों? जहाँ बहुत-से कारण हैं वहाँ एक यह भी है कि उसमें यह अक्षर बहुतायत के साथ लगाया गया - 'ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे' इत्यादि, यों ही भाषा कविता में भी, - लामें लकुचन लगि लमकि लुनाई लिए लतिका लवंगनि की लहकि लहकि उठै' इत्यादि पद बहुत ही सुहावने समझे जाते हैं। यही नहीं अंग्रेजी में लव लेडी, लैड, फारसी में लबे लाली लही लअब गुले लाला इत्यादि शब्द जीवित प्रमाण देते हैं कि यह अक्षर मनोहारिता का मूल है, तो फिर जिस शब्द में एक के स्थान पर छ: लकार हो वुह त्याज्य या अग्राह्य क्योंकर हो सकता है? अग्राह्य कहने वाले बनवासी उदासी मुनि लोग थे। उनकी दृष्टि में सारा संसार ही बरंच स्वर्ग सुख भी तुच्छ था।

इसी से सभी मजेदार बातों को त्यागने योग्य समझ बैठते थे और उनकी सब महाराजा लोग प्रतिष्ठा करते थे। अतः उनके वचन अथवा लेख पर आक्षेप करने में कोई साहसमान न होता था। इसी से जो चाहा लिख दिया, नहीं तो सुरापान, सुंदरी समागम, द्यूतक्रीड़ा, मांस भोजन जितनी बातें उन्होंने निषिद्ध ठहराई हैं सबकी सब प्रत्यक्ष और तत्क्षण आंनद देने वाली हैं। यहाँ तक कि जिन्हें इनका स्वादु पड़ जाता है वे न लोकनिंदा को डरते हैं, न धनहानि की चिंता करते हैं, न राजदंड को भटकते हैं न परलोक भय से अटकते हैं। अस्मात् इनके स्वादिष्ट होने के लिए प्रमाण ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जिस अनुभवी से पूछोगे कह देगा कि 'गरचे एक तरह की बला है इश्क। तौ भी देता अजब मजा है इश्क।'

यदि कोई शास्त्रार्थ का अभिमानी यह सिद्ध कर दे कि इन कामों का परिणाम अच्छा नहीं है तो भी हम पूछेंगे परिणाम का क्या ठिकाना। वह तो सभी बातों का यों ही हुवा करता है। ईश्वरभक्ति, देशभक्ति और सद्गुणभक्ति का परिणाम यह है कि मनुष्य घर-बाहर के काम को न रह के दिन-रात अपनी कल्पित आशा ही में रक्त सुखाया करता है, वीरता को परिणाम यह है कि आठों पहर मृत्यु का सामना बना रहता है, फिर परिणाम का सोच क्यों? भगवान बाल्मीकि कही गये हैं कि 'नाशांता संचयाः सर्वे पतनांताः समुच्छ्याः। संयोगा विप्रयोगांता मरणांतंतु जीवितम्।'

इसी भाँति के परिणाम सोचने ही वाले तो घर-बार, जाति-परिवार, संबंधी, सुख-संपत्ति छोड़-छोड़ बन में जा बैठते हैं और षटरस भोजन छोड़-छोड़ सूखे पत्तों से पेट भरते हैं। ऐसों की बातें मानना उनके पक्ष में क्योंकर हितकर हो सकता है जो संसार में रहकर अपना तथा अपने लोगों का जीवन आनंद में बिताया चाहते हों। ऐसों को तो सबके उपदेश छोड़ के हमारी ही शिक्षा माननी चाहिए अथवा स्वयं विचार करना उचित है कि छल कोई बुरी बात नहीं है। क्योंकि उसका लक्षण यह है कि अपने आंतरिक भाव को पूर्ण रूप से छिपाना, दूसरे की दृष्टि में कुछ का कुछ बतलाना और येन केन प्रकारेण अपना काम बना लेना, दूसरा चाहे भट्ठी में जाय चाहे भाड़ में।

सच पूछो तो यह काम ऐसे वैसों से हो भी नहीं सकता, उन्हीं से हो सकता है जो चतुरता व्यवहारकुशलता, अनुभवशीलता और कार्यदक्षता में पूरे पक्के हों। फिर भला ऐसे बुद्धिमानों के करने योग्य काम को बुरा समझना कौन-सी समझदारी है। यदि मुनियों ने छल-कपट को वर्जित किया है तो अवतारों ने उसे

आश्रय दिया है और यह मानने में किसी आस्तिक को भी आपत्ति न होगी कि ऋषियों की अपेक्षा अवतार श्रेष्ठतर होते हैं। सो अवतारों का नाम ही मायाबपुधारी होता है, जिसका पर्याय 'छल का पुतला' है। अर्थात् वास्तव में निराकार निर्विकार पर जगत के दिखाने को और अपने भक्तों को सुखित करने तथा अपनी सृष्टि के दुखदायकों के भार मिटाने को कभी मछली बन जाते हैं, कभी कछुआ के रूप में दृष्टि आते हैं, कभी बराह रूप की राह से जादूगर का काम चलाते हैं, यहाँ तक कि सर्वोपरि षोडष कला विशिष्ट पूर्णावतार में छहों ऋतु बारहों मास श्री गोपीजन के साथ छल ही करने में समय बिताते हैं और 'छल के रूप कपट की मूरति मिथ्या वाद जहाज। आउ मेरे झूठन के सिरताज! कहलाने ही में मगन रहते हैं।

अब बिचारने का स्थल है कि जिसे ऐसे परम पुरुषोत्तम आदर दें उसका निरादर करना कादरपन है कि नहीं? यदि इन बातों को पुराने अनसिविलाइज्ड हिंदुओं की कहानियाँ समझिए तो कोई प्रामाणिक इतिहास के प्रमाण से बतला दीजिए कि किस देश के, किस जाति के बड़े-बड़ों ने इसका अवलंबन नहीं किया। बड़े-बड़े राज्य बहुधा इसी के प्रभाव से स्थापित हुए हैं। फिर इसे बुरा समझना कहाँ की भलाई है। सच पूछो तो निर्बलों का बल यही है। जहाँ बल से काम न चले वहाँ इसके द्वारा सौ विश्वा चली जाती है। बलवानों को भी इसका आश्रय लेने से अपना पूर्ण बल नहीं व्यय करना पड़ता।

इसी से नीति शास्त्र के आचार्यों ने इसे राजकीय कर्तव्यों में सर्वोपरि माना है। जब विपक्षी प्रबल हो और साम अर्थात् मित्रता और दान अर्थात् धन तथा दंड अर्थात् मारधाड़ से वश में न आवै तब भेद अर्थात् उसके गृह, कुटुंब, इष्ट, मित्रादि में तोड़-फोड़, जोड़-तोड़ लगाने अथवा छल का पूर्ण प्रयोग करने से कार्य सिद्धि की संभावना हो जाती है। फिर हम-तुम ऐसे छोटे-मोटे गृहस्थों के पक्ष में छल की निंदा करना मानो अपने तईं प्राचीन एवं अर्वाचीन सम्राटों बरंच ईश्वरावतारों से श्रेष्ठ समझना है।

यों तर्कशास्त्र में बड़ी सामर्थ्य है, अच्छी से अच्छी वस्तु को बुरा और बुरे से बुरे पदार्थ को अच्छा सिद्ध कर देने में व्यय केवल बातों ही का और श्रम अकेली जीभ ही को होता है। किंतु सूक्ष्म दृष्टि से प्रत्यक्षवाद का विचार रख के विचारिए तो अवगत हो जाएगा कि छल में यदि केवल इतनी बुराई है कि धर्मशास्त्र की अवज्ञा होती है तो भलाई भी प्रत्यक्ष तथा इतनी ही है कि इसके द्वारा निर्धन दूसरों के धन का, निर्बल दूसरों के बल का, अविद्य दूसरों की विद्या

का, अप्रतिष्ठित दूसरों की प्रतिष्ठा का भोग कर सकते हैं। यदि इतने पर भी कोई हठी इसका अवलंबन करने वालों को बुरा ही समझे तो उसकी मूर्खता है। क्योंकि एक तो संसार के किसी गुण वा किसी वस्तु के परमाणु का वस्तुतः अभाव हो नहीं सकता, सब बातें और सभी चीजें किसी न किसी दशा में सदा ही से चली जायँगी। इस न्याय से छल भी सदा ही से होता आया है और होता रहेगा और जो बात अपने दूर किये दूर न हो सके उसे दूर-दूर करना अदूरर्शिता है। दूसरे यदि छल करना बुरा है तो दूसरों के छल में फँस जाना भी बज्र मूर्खता है। एवं इस कलंक से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि छल के तत्व को इतना समझता हो कि उसकी आँच अपने ऊपर किसी प्रकार न आने दे। इस रीति से भी छल का सीखना एक आवश्यक कर्तव्य है। नहीं तो यदि हम छली कहलाने से बचे भी रहेंगे तो प्रत्येक छली के छल में आ जाने वाले निरे मूर्ख कहलाने से नहीं बच सकते। अस्मात् छल का सीखना अवश्य है चाहे दूसरों के साथ करने को चाहे दूसरों के हाथ से बचने को! हाँ सीखने बैठे तो थोड़ा सीखना और करने बैठे तो थोड़ा करना वाहियात है क्योंकि खुल जाने पर बना-बनाया खेल बिगड़ जाता है।

इससे इसका अभ्यास इतना कर्तव्य है कि कभी चूक कर 'उघरे अंत न होय निबाहू कालनेमि जिमि रावन राहू' का उदाहरण न बनना पड़े और अत्यंत वैकट्य वालों के साथ भी इसका आचरण पाप है। क्योंकि यह बड़ी भारी चतुरता और बड़े भारी अनुभव से प्राप्त होता है एवं बड़े ही भारी काम आता है। अतः छोटे ठौर पर इसका काम में लाना इसकी विडंबना करना है और इतने भारी महान गुण की विडंबना करके अपनी बिडंबना कराने से बचना असंभव है। जो लोग अपने कहलाते हैं, जो अपना आश्रय किए बैठे हैं, जो अपने विश्वास पर उसके साथ छल किया तौ तौ मानो अपने तीक्ष्ण एवं सुचलित शस्त्र को अपने ही ऊपर चला लिया।

यों ही छोटी-छोटी बातों में छोटे-छोटे अभावों की पूर्ति के अर्थ वा छोटी-छोटी वस्तुओं की आशा पर इसका काम में लाना भी व्यर्थ है। क्योंकि जो बात बहुधा की जाती है वह प्रगट हुए बिना नहीं रहती और इसका प्रकट होना दुःख, दुर्नाम, दुर्दशा की जड़ है। अतः बड़े से बड़े अवसरों पर दूर से दूर वालों के साथ बर्ताव में लाने के निमित्त इसका संचय कर रखना परम पांडित्य है। यह एक ऐसा अनोखा शस्त्र है जो देखने में गुलाब के फूल की भाँति सुंदर और कोमल जान पड़ा है पर काम में लाने के समय बड़ी-बड़ी और बहुत-सी

तोपों को तुच्छ कर देता है। और इसकी प्राप्ति का उपाय यह कि इसके संचालक मात्र से मेलजोल रक्खे हुए उनके प्रत्येक रंग-ढंग देखता रहे।

बस इस रीति से इसे अपने हाथ कर लेने में अष्ट प्रहर संलग्न रहिए और चलाने के समय इतना ध्यान रखिए कि शतघ्नी के द्वारा मच्छर मारना शोभा नहीं देता तथा यदि चलाने को जी न चाहे तो दूसरों की चोट से रक्षा पाना भी अति ही श्रेयस्कर है। फिर हम क्योंकर मान लें कि छल बुरा है। यदि किसी बड़े ही विद्या बुद्धि विशारद के मुलाहिजे से मानना ही पड़े तो इतना ही मानेंगे कि कच्चों के लिए बुरा है, वास्तव में नहीं। और मान लें कि बुरा है तथापि अच्छी रीति से व्यवहृत करने पर संखिया भी अनेक रोग हरती है और शरीर के पक्ष में अमृत का काम करती है कि नहीं? यों ही सब वस्तुओं को भी समझ लीजिए। जैसे प्रत्येक भले से भले कार्य व पदार्थ में कुछ न कुछ बुरा अंश और बुरे से बुरे में भला अंश होता है वैसे ही इसमें भी उन्नति और रक्षा का भला भाग अधिकतर है। जिसे प्रतीति न आवैं वुह आप खोल देखै फिर देखै कैसे कहता है कि छल में बुराई ही बुराई है।

छल (2)

प्रतापनारायण मिश्र

दो लेखों में हम यह दिखला चुके हैं कि छल बहुत अच्छा और मजेदार गुण है तथा ऐसे-वैसे साधारण लोगों से हो भी नहीं सकता! अतः इसके सीखने में यत्न करना चाहिए। इस पर हमारे कई मित्रों ने पूछा है कि सीखें तो क्योंकर और कहाँ पर सीखें। उनके लिए हम आज बतलाते हैं कि सीखना किसी बात का चित्त की एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता हौर चित्त तभी एकाग्र होता है जब उसे भय अथवा लालच का सामना करना पड़ता है। इसी से जो बालक पढ़ने में मन नहीं लगाते और भैया राजा कहने पर भी राह पर नहीं आते उनके लिए प्राचीनों की आज्ञा है कि 'लालने बहवोदोषास्ताड़ने बहवो गुणाः' किंतु इस गुण के सीखने की इच्छा रखने वाले बालक नहीं होते, न सीखने से जी ही चुराते हैं अस्मात् भय अथवा ताड़ना के पात्र नहीं हैं।

यों अकस्मात् किसी कपटी के मायाजाल में पड़ के डर व कष्ट उठाना पड़े तो और बात है, पर बुद्धिमानी यह है कि उस प्रकार के डर और कष्ट को अपने ऊपर न आने दें, किसी दूसरे ही को उसमें फँसा कर कपटकारक के हथखंडों और कापट्यजालबद्ध गावदीराम की दशाओं का तमाशा देखता हुवा

शिक्षा लाभ करें। जिससे इतना न हो सकेगा वह कपट कालेज का अयोग्य विद्यार्थी हैं और अपने आप ताड़ना पात्र बनता है। हमें संदेह है कि कष्ट एवं हानि सहने पर वह छलविद्या में कोई डिग्री पास कर सके वा न भी कर सके।

बहुत लोग कहते हैं कि आदमी कुछ खो के सीखता है पर हमारी समझ में इस विद्या को भी जिसने कुछ खो के सीखा उसने क्या सीखा। यद्यपि सीखना अच्छा ही है चाहे जैसा सीखा सही किंतु सुयोग्य कहलाने के योग्य वह है जो कुछ ले के सीखे। अधिक नहीं तो जिसके पास सीखता हो उसका मन ही अंटी में कर ले। मिष्ट भाषण एवं मिथ्या प्रेमप्रदर्शन को यहाँ तक पहुँचा दे कि उसे पूरा विश्वास हो जाय कि हमारा सच्चा विश्वासी है हमारे भेद अपने बाप के आगे भी न खोलेगा।

साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षक महाशय पर अपना भेद न प्रकट होने पावै और बड़ी ही भारी स्वार्थसिद्धि की आशा तथा आवश्यकता के बिना उनका भेद भी दूसरा न जानने पावे। बस फिर विद्या आ जाना असंभव न होगा। पर यह उन्हीं का साध्य है जिन्हें एकाग्रचित्तता का अभ्यास हो और चित्त की एकाग्रता के लिए हम लिख चुके हैं कि भय अथवा प्रलोभन की आवश्यकता है। उसमें भय तो भाग्य ही के वश कभी आ जाय तो खैर नहीं तो काल्पनिक भय को कभी पास न फटकने देना चाहिए। बरंच उत्तम तो यह है कि सचमुच हानि अथच कष्ट की संभावना हो तौ भी चित्त को इन मंत्रों से धैर्य प्रदान करता रहे कि – होगा सो देखा जाएगा, दुनिया में सुख-दुःख सभी को हुआ करते हैं, दूसरे का चार हाथ थोड़ी हैं।

विपक्षी धन बल दिखावै तो हम छल-बल से काम लेंगे – इत्यादि और जब भय आ ही पड़े तो उसे भय न समझकर उसके दूर करने के उपाय को मुख्य कर्तव्य समझना चाहिए। फिर बस परमेश्वर चाहे तो भय का भय नहीं ही रहेगा। और यदि आ पड़े तो खैर छल सीखने वा अभ्यास में लाने का अवसर मिला सही। किंतु परमेश्वर ऐसे अवसर न दिखावे यह अच्छा है। हमारे पाठक कहते होंगे कि छल की शिक्षा और बार-बार परमेश्वर-परमेश्वर! यह क्या बात है!

इसके उत्तर में हमें कहना पड़ता है कि संसार में नास्तिक बहुत थोड़े हैं और जो हैं उन पर श्रद्धा बहुत थोड़े लोगों की होती है। इस कारण उन्हें कोई मुँह नहीं लगाता। इससे उन्हें छल करने के लिए पात्र नहीं मिलते और पात्रभाव से अपनी मर्यादा के रक्षणार्थ निष्कपटता का पुतला बनना पड़ता है। अस्मात्

छलियों को अवश्य चाहिए कि ईश्वर और धर्म के गीत गाकर संसार में प्रतिष्ठित बने रहें। बरंच जिनके साथ छल करना हो उनके सामने तो इन्हीं की रुचि के अनुसार परमेश्वर का मानने वाला औ धर्मतत्व का जानने वाला बनना पड़े तभी सुभीते को हिकमत है। फिर क्यों मानिए परमेश्वर नहीं है तो लोगों के ठगने को एक शब्द ही सही। और यदि है तो छल जनित पापों को दूर करेगा। इस रीति से न लोक का भय रहेगा न परलोक का।

रहा प्रलोभन, वह किसी प्रकार त्याज्य नहीं है बरंच चित्त की एकाग्रता का सहज और सुहावना उपाय है। अतः उसकी प्राप्ति के अर्थ यत्न कर्तव्य है। हमारी समझ में पंच सकार अर्थात् संगीत, साहित्य, सुरा, सौंदर्य, की सेवा का थोड़ा-बहुत अभ्यास करते रहना सहृदयता तथा एकाग्रचित्तता के उत्सुकों को अत्युत्तम है। क्योंकि यह पाँचों पदार्थ चित्त को आकर्षित करके चिंता रहित कर देने की बड़ी सामर्थ्य रखते हैं। जो इनके रस का अभ्यासी है वह कैसी ही कठिनता का सामना पड़े पर घबराता नहीं है, कैसा ही कष्ट, कैसी हानि, कैसा ही सोच क्यों न उपस्थित हो, जहाँ नियमानुसार कोई मजेदार तान अलापी अथवा सुनी, जहाँ कोई रसीला छंद लिखा वा पढ़ा, जहाँ दो पियाले चढ़ाए, जहाँ किसी सुंदरी का दर्शन स्पर्शन किया, जहाँ किसी अपने से चित्त वाले के पास बैठे वहीं सब दुःख-दरिद्र भूल जाते हैं और तबीयत में ताजगी आ जाती है जो छल साधन की बड़ी भारी सहायिनी है। जो लोग कहते हैं कि मनुष्य पंच सकार के संसर्ग से पागल हो जाता है उनका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि पागल वह हो जाते हैं जो इनमें से किसी प्रकार के गुलाम बन जाते हैं अथवा नए-नए आ फँसते हैं। किंतु जो इनके रसास्वादन के अभ्यासी हैं तथा इन्हें परिमितिबद्ध रख के दास्य स्वीकार करने के स्थान पर मनोविनोद संपादन मात्र में इनकी सहायता समयानुसार ले लिया करते हैं वे कदापि पागल नहीं बनते बरंच पागलपन की जड़ अर्थात् चित्त की उद्विग्नता दूर करके अधिक सावधान और चातुर्यमान हो जाते हैं और बहुधा देश काल पात्र का विचार करके इन्हीं के द्वारा दूसरों को पागल बना के, हँसा, खिला मूँड लेते हैं।

इतिहासवेत्ताओं और जगत्कौतुकदर्शकों से छिपा नहीं है कि नीतिज्ञ पुरुषों ने एक वा दो ही सकारों के मायाजाल से ला के कितने ही बड़े-बड़ों का तन, मन, धन माँग लिया है और आज भी माँग लेते हैं। फिर कोई क्योंकर सिद्ध कर सकता है कि सावधान पंचसकारी पागल होता है। हाँ, जो संगीत, साहित्य और सौहार्द की पूँजी को सौगुना प्रसिद्ध करना तथा सुरा एवं सौंदर्य संपर्क को पूर्ण

रूप से गुप्त रखना नहीं जानता वह अवश्य पागल है। किंतु ऐसे पागल भला कपट्यशास्त्र क्या सीखेंगे। अत: उनकी चर्चा इस स्थल पर व्यर्थ है। हमारा लेख तो केवल उनके उपदेशार्थ है जो छल विद्या सीखना चाहते हो। उनसे हम अवश्य कहेंगे कि पंच सकार का उचित रीति से सेवन करते रहिए तो यह पूछने की आवश्यकता न रहेगी कि क्योंकर सीखें। रहा दूसरा प्रश्न, अर्थात् कहाँ पर सीखें। इसका साधारण उत्तर तो यही है कि कपटी के कोई बाह्य चिह्न नहीं होते। जैसे सब मनुष्य हैं वैसे ही वे भी हुवा करते हैं। अत: जिस पुरुष में कपटकारिता देखो उसी के चरित्रों से संथा ले लिया करो और दूसरों के प्रति उसी की चाल-ढाल का अनुसरण किया करो। किंतु इस मंत्र को सदा स्मरण करते रहो कि जो कोई जान लेगा कि हम क्या करते हैं तो बुरा होगा।

बस यों ही करते-करते अच्छे-खासे कपटी हो जाओगे। पर विशेष उत्तर सुनने की लालसा हो और शास्त्र का प्रमाण पाए बिना जी न भरता हो तो इस श्लोक को कंठस्थ कर रखिए कि 'देशाटन पंडितमित्रता च बारांगना राजसभा प्रवेश:। अनेक शास्त्रावलोकनं चातुर्यमूलानि वर्दंति संता:।।' लो लोग द्रव्योपार्जनादि के लिए देश-विदेश फिरा करते हैं अथवा बड़े नगरों में रह के नाना देश के लोगों की रीति-व्यवहार देखा करते हैं उनसे छिपा नहीं है कि कई जाति के लोगों को ईश्वर ने ऐसा स्वाभाविक गुण दे रक्खा है कि उनमें के यदि हजार पाँच सौ जन एकत्र किये जायँ तो कदाचित् एक ही दो ऐसे मिलेंगे जो शुद्ध 'छल के रूप कपट की मूरति मिथ्यावाद जहाज' न हों। हम उन जातियों का नाम बतला के संत का झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते किंतु बाहिरी लक्षण बतलाए देते हैं कि बहुधा रंग गोरा, चेहरा खूबसूरत, शरीर निर्बल, स्वर मृदुल, मांस-मदिरा से सच्ची घृणा नहीं, ईश्वर और धर्म का आग्रह नहीं, मित्रता-शत्रुता का क्षण भर भरोसा नहीं, स्वार्थपरता से कोई बात खाली नहीं। उनका काम हो तो चाहे जैसी खुशामद करा लीजिए किंतु तुम्हारा प्रयोजन आ लगे तो मानो कभी की जान-पहिचान ही नहीं।

ऐसे लक्षण वालों से संसर्ग रखना छलविद्या सीखने में बड़ा सहारा देता है। किंतु ऐसे लोग इस देश के केवल बड़े नगरों में तथा अपने ही भूभाग में मिलते हैं। इसी से शास्त्रकारों ने देशाटन की आज्ञा दी है और पंडितमित्रता अर्थात् नीतिबेत्ता, स्वार्थसाधनतत्पर, वेद-शास्त्रादि के वचनों में अपने मतलब का अर्थ निकाल लेने में समर्थ, अपनी कही हुई बात को नाना रूप से पलट देने के अभ्यासियों की संगति भी इसी निमित्त बतलाई है कि देश-विदेश घूमने वा नाना

देशवासियों का रंग-ढंग देखने तथा छँटे लोगों से हेल-मेल रखने से मनुष्य की आँखें खुल जाती हैं और झूठ बोलना पाप नहीं जान पड़ता। जैसा कि फारस के विद्वानों का वाक्य है कि 'जहाँ दीदा बियार गोयद दरोगा'। फिर क्या, जहाँ झूठ बोलने की हिचक जाती रही वहाँ छल सीखने का ढर्रा खुला हुआ ही समझिए। और यदि इन दोनों रीतियों अर्थात् देशाटन और गुरूघंटालों के संग से पूर्ण शिक्षा ग्रहण कर सकिए तो बरांगना देवी की चरणसेवा स्वीकार कीजिए, वे पक्का कर देंगी। क्योंकि ऊपर हम जितने कपटी वालों के लक्षण बतला चुके हैं वे इनमें प्राय: सभी विद्यमान होते हैं। ऊपर भोली-भाली सूरत और मीठी-मीठी बातें बना के परधन हरण का उन्हें दिन-रात अभ्यास चढ़ा रहता है।

श्री तुलसीदास गोस्वामी तक ने जिनकी महिमा में साक्षी दी है कि 'पर मन पर धन हरन को, गनिका बड़ी प्रवीन' जिनका-सा रूप धारण करके साक्षात् परमेश्वर ने भी छल ही किया है, अर्थात् समुद्रमंथन के समय मोहनी अवतार ले के आपने अपने प्यारे देवताओं को तो अमृत पिलाया था और आँखें-भौंहें मटका के राक्षसों को मदिरा पिला के पागल कर दिया था। जिन आर्यकुलकलंकों को पुराणों का नाम ही सुनते मृगी रोग आ चढ़ता है उनकी तो बात ही और है, नहीं तो मोहनी रूप की कथा से बुद्धिमान मात्र यह उपदेश लाभ कर सकते हैं कि जब भगवान् तक इस रूप में प्रगटित होकर ऐसा ही करते हैं तब दूसरे पुरुष समुदाय से संसर्ग रखने वालियों से सच्ची प्रीति और सरल व्यवहार की आशा करना निरा व्यर्थ है।

निरे भोलानाथ तो उनके दर्शन ही मात्र से लँगोटी तक गँवा बैठते हैं और केवल विषपान के योग्य रह जाते हैं निरे राक्षस अर्थात् इंद्रियों के गुलाम भी उनके हाथ से मोह मदिरा पी के मतवाले अर्थात् ज्ञानशून्य हो बैठते हैं। वहाँ तो केवल उन्हीं देवताओं को निर्वाह है जिनका लक्षण रामायण में 'आए देव सदा स्वार्थी। वचन कहहिं जन परमारथी' तथा 'ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराई विभूति' इत्यादि लिखा है। यदि ऐसे गुरुओं के निकट भी छल शिक्षा न प्राप्त कर सकिए तो आप का अभाग्य है। किंतु बतलाने वाले इनसे भी अधिक श्रेष्ठ शिक्षक बतला गये हैं जो राजसभा अर्थात् कचहरी, दर्बार में रह के जीवनयात्रा करते हैं। अर्थात् वकील, मुखतार, झूठे गवाह, पूरे अदालतबाज इत्यादि जिनका काम ही झूठ को सच, सच को झूठ कर दिखाना है। बस इन्हीं का सेवन और देश-देशांतर की नीति संबंधी पुस्तक तथा कुटिल नीतिज्ञों के जीवनचरित्र देखते-सुनते, समझते-बूझते रहिए तो ईश्वर चाहेगा तो बड़े अच्छे

पक्के पूरे छलविद्या विशारद हो जाइएगा। पर इतना भी स्मरण रखिए कि यह महासिद्धि देवाधिदेव स्वार्थदेव की दया के बिना नहीं प्राप्त होती और वे उन्हीं अनन्य भक्तों पर दया करते हैं जो ईश्वरभक्ति, धर्म्मामासक्ति, लोकलज्जा, परलोकभय इत्यादि को उन पर निछावर बरंच बलिदान करके उन्हीं के हो रहते हैं, धर्म कर्म विवेचना प्रतिष्ठादि का केवल ढकोसला मात्र रखते हैं, सो भी तभी तक जब तक स्वार्थेश्वर की आराधना में बाधा न आवे। बस यही मार्ग अवलंबन कीजिए तो देख लीजिएगा छल की कैसी महिमा है और उसकी सेवा में कैसा आनंद है।

4

जगमोहन सिंह

ठाकुर जगमोहन सिंह (4 अगस्त 1857) हिन्दी के भारतेन्दुयुगीन कवि, आलोचक और उपन्यासकार थे। उन्होंने सन् 1880 से 1882 तक धमतरी में और सन् 1882 से 1887 तक शिवरीनारायण में तहसीलदार और मजिस्ट्रेट के रूप में कार्य किया। छत्तीसगढ़ के बिखरे साहित्यकारों को जगमोहन मंडल बनाकर एक सूत्र में पिरोया और उन्हें लेखन की सही दिशा भी दी। जगमोहन मंडल काशी के भारतेन्दु मंडल की तर्ज में बनी एक साहित्यिक संस्था थी।

हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य की उन्हें अच्छी जानकारी थी। ठाकुर साहब मूलत: कवि ही थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा नई और पुरानी दोनों प्रकार की काव्यप्रवृत्तियों का पोषण किया।

जीवन परिचय

ठाकुर जगमोहन सिंह का जन्म विजयराघवगढ़ रियासत में ठाकुर सरयू सिंह के राज परिवार में हुआ था। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में ठा. सरयू सिंह ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया था। फलस्वरूप अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्हें काले पानी की सजा सुनाई गई। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत में सजा भोगने की बजाय ठा. सरयू सिंह ने मौत को गले लगना उचित समझा। जगमोहन सिंह ऐसे ही क्रांतिकारी, मेधावी एवं स्वप्न दृष्टा सुपुत्र थे।

अपनी शिक्षा के लिए काशी आने पर उनका परिचय भारतेंदु और उनकी मंडली से हुआ। बनारस के क्वींस कालेज में अध्ययन के दौरान वे भारतेंदु

हरिश्चंद्र के सम्पर्क में आए तथा यह सम्पर्क प्रगाढ़ मैत्री में बदल गया जो कि जीवन पर्यन्त बनी रही।

1878 में शिक्षा समाप्ति के बाद वे विजयराघवगढ़ आ गए। दो साल पश्चात् 1880 में धमतरी (छत्तीसगढ़) में तहसीलदार नियुक्त किये गए। बाद में तबादले पर शिवरीनारायण आये। कहा जाता है कि शिवरीनारायण में विवाहित होते हुए भी इन्हें 'श्यामा' नाम की स्त्री से प्रेम हो गया। शिवरीनारायण में रहते हुए इन्होने श्यामा को केंद्र में रख कर अनेक रचनाओं का सृजन किया जिनमे हिंदी का अत्यंत भौतिक एवं दुर्लभ उपन्यास श्याम-स्वप्न प्रमुख है।

कृतियाँ

उनके तीन काव्यसंग्रह प्रकाशित हैं –

(1) 'प्रेम-संपत्ति-लता' (सं. 1942 वि.),

(2) 'श्यामालता', और

(3) 'श्यामासरोजिनी' (सं. 1943)।

इसके अतिरिक्त इन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' का बड़ा ही ललित अनुवाद भी ब्रजभाषा के कवित्त सवैयों में किया है। हिंदी निबंधों के प्रथम उत्थान काल के निबंधकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

शैली पर उनके व्यक्तित्व की अनूठी छाप है। वह बड़ी परिमार्जित, संस्कृतगर्भित, काव्यात्मक और प्रवाहपूर्ण होती हैं। कहीं-कहीं पंडिताऊ शैली के चिंत्य प्रयोग भी मिल जाते हैं। 'श्यामास्वप्न' उनकी प्रमुख गद्यकृति है, जिसका संपादन कर डॉ. श्रीकृष्णलाल ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराया है। इसमें गद्य-पद्य दोनों हैं, किंतु पद्य की संख्या गद्य की अपेक्षा बहुत कम है। इसे भावप्रधान उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। आद्योपांत शैली वर्णानात्मक है। इसमें चरित्रचित्रण पर ध्यान न देकर प्रकृति और प्रेममय जीवन का ही चित्र अंकित किया गया है। कवि की शृंगारी रचनाओं की भावभूमि पर्याप्त सरस और हृदयस्पर्शी होती है। कवि में सौंदर्य और सुरम्य रूपों के प्रति अनुराग की व्यापक भावना थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इसीलिए कहना था कि 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' के अभ्यास और विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश में निवास के कारण विविध भावमयी प्रकृति के रूपमाधुर्य की जैसी सच्ची परख जैसी सच्ची अनुभूति इनमें थी वैसी उस काल के किसी हिंदी कवि या लेखक में नहीं पाई जाती (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 474, पंचम संस्करण)। मानवीय सौंदर्य

को प्राकृतिक सौंदर्य के संदर्भ में देखने का जो प्रयास ठाकुर साहब ने छायावादी युग के इतने दिनों पहले किया इससे उनकी रचनाएँ वास्तव में 'हिंदी काव्य में एक नूतन विधान' का आभास देती हैं। उनकी ब्रजभाषा काफी परिमार्जित और शैली काफी पुष्ट थी।

उनकी दो कुण्डलियाँ प्रस्तुत हैं-

इक थाना तहसील के मध्य धर एक फुटि
उत बजार सों प्रबल जल निकस्यो अट्टा टूटि
निकस्यों अट्टा टूटि फुटि गिजि परीं अटारी
गिरि गेह तजि देह देहरी और दिवारी
(क)जोगी डिफा सुदीप मनौ तंह जल जाना
उत पुरब सब पंथ रोकि घेरवौ त थाना ।।
पूरब केरा के निकट पश्चिम निकट खरौद
लगभग फेर लुहारसी उत्तर ग्रामहिं कोद
उत्तर ग्रामहि कोद जहां टिकरी पारा है
दच्छिन हसुवा खार पार लौ जल धारा है
जंह लौ देखो नजर पसारत जल जल घेरा
कैय्यक कोसन फैलि घेरि फिरि पूरब केरा ।।

उन्नीसवीं सदी के अंत की हिंदी कविता और ठाकुर जगमोहन सिंह

कृष्ण कुमार मिश्र

हिंदी कविता का इतिहास बहुत पुराना है, इसमें उत्तरोत्तर रूप, गुण, भाव व अभिव्यक्ति के स्तर पर परिवर्तन होता रहा है। हिंदी कविता का आविर्भाव काल आदिकाल है जहाँ से हिंदी की यात्रा प्रारंभ होती है। आधुनिककालीन हिंदी कविता, आदिकाल की विभिन्न प्रवृत्तियों से गुजरते हुए भक्तिकालीन विभिन्न धाराओं व रीतिकालीन विभिन्न प्रवृत्तियों से होकर आधुनिक काल में प्रवेश करती है। जिस प्रकार आधुनिक काल में गद्य साहित्य का जन्म हुआ उसी प्रकार पद्य साहित्य का पुनर्निर्माण भी हुआ। इस समय की कविता के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि 'यह सूचित किया जा चुका है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस प्रकार गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करके गद्य साहित्य को देशकाल के अनुसार नए-नए विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को

भी नए-नए क्षेत्रों की ओर मोड़ा। इस नए रंग में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की वाणी का था। उसी से लगे हुए विषय लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। हास्य और विनोद के नए विषय भी इस काल में कविता को प्राप्त हुए। रीतिकाल के कवियों की रूढ़ि में हास्यरस के आलंबन कंजूस ही चले आते थे। पर साहित्य इस नए युग के आरंभ से ही कई प्रकार के नए आलंबन सामने आने लगे - जैसे, पुरानी लकीर के फकीर, नए फैशन के गुलाम, नोच-खसोट करने वाले अदालती अमले, मूर्ख और खुशामदी रईस नाम या दाम के भूखे देशभक्त इत्यादि। आचार्य शुक्ल के इस उद्धरण में आधुनिक काल की प्रारंभिक हिंदी कविता का लगभग समस्त पक्ष स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है।

उन्नीसवीं सदी के अंत की हिंदी कविता के विकास में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके मंडल के अन्य सदस्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। आधुनिककालीन कविता की शुरुआत 1850 ई. से प्रारंभ होती है। 1850 ई. में ही भारतेंदु का जन्म हुआ तथा इनके जन्म के उत्तरोत्तर हिंदी कविता में महत्वपूर्ण परिवर्तन होता रहा। यह निरंतर विकास के मार्ग पर इन कर्मठ कवियों के सहारे अग्रसर होती रही। बदलते परिवेश और हालात में विकसित इस युग की कविता को पुनर्जागरण की कविता की संज्ञा दी गई। उन्नीसवीं सदी की हिंदी कविता का चरमोत्कर्ष उसके अंत में ही दिखलाई पड़ता है। 1868 ई. में भारतेंदु द्वारा संपादित पत्रिका 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन प्रारंभ होता है और तभी से भारतेंदु मंडल तथा श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने हिंदी साहित्य को मजबूती से सहारा दिया। आधुनिककालीन हिंदी कविता को समृद्धि और मजबूती, उन्नीसवीं सदी के अंत की हिंदी कविता से प्राप्त होती है। जिन महत्वपूर्ण कवियों ने आधुनिककालीन हिंदी कविता से परिचय कराया उनकी साहित्यिक पृष्ठभूमि उन्नीसवीं सदी के अंत में तैयार हो चुकी थी इसीलिए बीसवीं सदी की प्रारंभिक कविता को उन्नीसवीं सदी की हिंदी कविता का विस्तार माना जाता है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा 'शंकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त आदि मूर्धन्य कवि अपनी कविता की भावभूमि और भावबोध उन्नीसवीं सदी से लेकर अवतरित हुए।

उन्नीसवीं सदी की हिंदी कविता में कई भाषाओं की रचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिसमें ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली तीनों ने समान रूप से काव्य की सेवा की। इस काल में पाश्चात्य संस्कृति का संपर्क और भारतीय राष्ट्रीयता के उदय की जो मिली-जुली प्रतिक्रिया लोक में हुई उसकी प्रतिध्वनि उस युग

की कविता में सुनाई देती है। इसी को ध्यान में रखकर भारतेंदु ने अपने 'कालचक्र' में लिखा कि 'हिंदी सन् 1873 ई. में नई चाल में ढली'। ऐसा नहीं था कि भारतेंदु की उद्घोषणा के साथ ही हिंदी 1873 ई. में बिल्कुल बदल गई बल्कि धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन होना शुरू हुआ। स्वयं भारतेंदु ने कुछ कविताएँ खड़ी बोली हिंदी में लिखकर इस परिवर्तन की नींव रखी।

उन्नीसवीं सदी की हिंदी कविता के विकास को रेखांकित करते हुए सत्यदेव मिश्र लिखते हैं कि 'हिंदी खड़ी बोली काव्य रचना भारतेंदु युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस भाषागत उपलब्धि के संदर्भ में हिंदी कविता की गतिविधि लगभग बीस वर्षों तक अवरुद्ध-सी हो गई थी। कारण स्पष्ट था, हिंदी खड़ी बोली रचना प्रायोगिक स्तर पर थी। शैलीगत एकरूपता एवं रचना के एकरूप मानदंड की स्थिरता का इस समय सर्वथा अभाव था। इस समय के नवीन प्रयोग कवि शिवप्रसाद सितारेहिंद, बाबू हरिश्चंद्र, बाबू लक्ष्मी प्रसाद, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर', आदि नवीन शैली की खोज में भटकते हुए दृष्टिगत हो रहे थे। इस प्रकार भारतेंदुयुगीन खड़ीबोली काव्य रचना विशेष प्रकार की संक्रांति में दबी हुई अपना मार्ग बना रही थी।' सत्यदेव मिश्र ने उन्नीसवीं सदी की हिंदी कविता की भाषा-शैली की दुविधा और इसके प्रयोग की पूरी रूप-रेखा प्रस्तुत उद्धरण में उद्धृत की है। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी तथा विवेकानंद के विचारों आदि का प्रभाव उन्नीसवीं सदी की कविता को पल्लवित और पुष्पित करने में अहम भूमिका का निर्वाह करता है।

आधुनिक हिंदी कविता की मजबूत नींव रखने का उत्तरदायित्व उन्नीसवीं सदी के अंत की हिंदी कविता ने बखूबी निभाया है। इस युग में जन सामान्य में पुनर्जागरण का बीजारोपण एक बार फिर से हुआ। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की एक लहर दौड़ गई। इस युग का परिवर्तन श्रृंगारिक रसिकता, अलंकार का मोह, रीति का निरूपण, प्रकृति का उद्दीपन के रूप में चित्रण आदि रीतिकालीन रीतिबद्धता पर अंकुश लगाता है। भक्ति और नीति के प्रति लोगों की भावनाएँ थोड़ी बदली-बदली सी नजर आने लगीं। इस युग ने जनता को सचेत करने के लिए जातीय संगीत जैसे लोकगीत की शैली पर समाज को संबोधित कविताओं की रचना की। मातृभूमि से प्रेम, बाल-विवाह का निषेध, भ्रूण-हत्या की निंदा जैसे विषयों का वर्णन कविताओं में देखा जाने लगा। राष्ट्रीय भावना का प्रबल उद्गार इस काल की अन्यतम विशेषता थी।

ठाकुर जगमोहन सिंह की स्वच्छंदवृत्ति –

जिस स्वच्छंदतावाद का प्रर्वतक आधुनिककालीन कविता में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक को माना है उस स्वच्छंदतावाद का प्रथम लक्षण ठाकुर जगमोहन सिंह के काव्य में दिखलाई पड़ता है। ठाकुर जगमोहन सिंह भारतेंदु युग के स्वच्छंद कवि माने जाते हैं। उनकी इस प्रकृति के विषय में डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है कि 'इस काल में जगमोहन सिंह अपनी स्वच्छंदतावादी रचनाओं के लिए जो घन आनंद की परंपरा में पड़ती है, स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने अपनी प्रेयसी 'श्यामा' के विरह में 'श्यामास्वप्न', 'श्यामविनय', 'श्यामलता', 'श्यामसरोजनी' आदि की सर्जना की। इनमें उनके अकृत्रिम हृदय का उद्‌गार है।' बच्चन सिंह के कथन से यह प्रतीत होता है कि ठाकुर जगमोहन सिंह का कृतित्व और व्यक्तित्व रीतिमुक्त कवियों से बहुत मेल खाता है। जिस तरह से रीतिमुक्त कवि घनानंद, बोधा, आलम आदि ने अपनी प्रेमिकाओं को अपने काव्य का विषय बनाया उसी प्रकार से जगमोहन सिंह ने भी अपनी प्रेमिका को अपने काव्य की प्रेरणा का स्रोत बनाया।

आदिकाल और मध्यकाल में जो प्रकृति, कवियों की लेखनी से बहुत दूर हो चुकी थी, जो केवल कहीं-कहीं पर उद्दीपक का कार्य करती हुई दिखाई देती थी उस प्राकृतिक छटा को आधुनिक काल में जगमोहन सिंह की कविता में एक आलंबन प्राप्त हुआ। इनकी इस विशेषता का पल्लवन आगे चलकर श्रीधर पाठक और छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में अपने चरम पर दिखाई पड़ता है। इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि 'यद्यपि जगमोहन सिंह जी अपनी कविता को नए विषयों की ओर नहीं ले गए, पर प्राचीन संस्कृत काव्यों के प्राकृतिक वर्णनों का संस्कार मन में लिए हुए, अपनी प्रेमचर्या की मधुरस्मृति से समन्वित विंध्यप्रदेश के रमणीय स्थलों को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होंने देखा है, वह ध्यान देने योग्य है। उसके द्वारा उन्होंने हिंदी काव्य में एक नूतन विधान का आभास दिया था।' ठाकुर जगमोहन सिंह की कविताई में प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों का प्रभाव है वे अपनी प्राचीन प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत को पोषित करना चाहते थे परंतु उनके पश्चात अन्य किसी कवि ने प्राचीनता के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। आचार्य शुक्ल का यह उद्धरण उनके प्रकृति विषयक अनुराग को उद्धृत करता है। भारतेंदु और प्रतापनारायण मिश्र के बाद ये तीसरे भारतेंदुयुगीन कवि हैं जिन्हें अल्पायु मिली थी परंतु इन दोनों साहित्यकारों की तरह ठाकुर साहब ने भी हिंदी साहित्य जगत

में उल्लेखनीय कार्य किया। इनका जन्म जबलपुर के निकट मध्य-प्रदेश में हुआ था किंतु शिक्षा हेतु इन्हें काशी ले जाया गया और यहीं पर इनका संपर्क भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से हुआ। भारतेंदु से प्रभावित होकर ये भी साहित्य सृजन की ओर उन्मुख हुए। ठाकुर साहब कई भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने गद्य और पद्य, दोनों में समान अधिकार से लेखन कार्य किया है।

ठाकुर जगमोहन सिंह को हिंदी के साथ अँग्रेजी और संस्कृत भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में साहित्य सृजन किया। इनकी उपर्युक्त रचनाओं से ज्ञात होता है कि इन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। ठाकुर साहब आधुनिक काल के पहले ऐसे कवि हैं जिन्होंने मानवीय सुंदरता को प्राकृतिक सौंदर्य के साथ समन्वित करके प्रस्तुत किया है। ठाकुर साहब राजवंश से संबद्ध होने के बावजूद देशभक्ति और राष्ट्रीयता के पोषक थे। उन्होंने अन्य समकालीन कवियों की तरह देशदशा का वर्णन किया तथा अपनी कविताओं के द्वारा देशवासियों को प्रेरित करने का प्रयास किया।

ठाकुर साहब ने विंध्य प्रदेश के सुरम्य स्थलों का अत्यंत सूक्ष्म निरीक्षण किया है। यह इनका सूक्ष्म अवलोकन हिंदी आधुनिक कविता को एक नई दृष्टि, एक नई विचारधारा का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है। हिंदी साहित्य के आदिकाल से ही यह देखा गया है कि संस्कृत काव्य की विशेषताएँ लुप्त हो चुकी थीं, प्रकृति का जो सूक्ष्म वर्णन वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति के महाकाव्य में पाई जाती थी वह उच्चता बाद के संस्कृत कवियों के यहाँ भी अप्राप्य है, हिंदी कवियों की तो बात ही क्या है। हिंदी साहित्य में प्रकृति का वर्णन मात्र नायक-नायिका के भावों को प्रकाशित कराने का एक माध्यम बन गया था। ठाकुर साहब ने प्रकृति का वर्णन स्वच्छंद रूप से संस्कृत कवियों की भाँति किया। इनके काव्य में शृंगार-वर्णन और प्रकृति-वर्णन की प्रमुखता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ 'श्यामास्वप्न' उपन्यास में देखी जा सकती हैं, जिसमें कुछ कविताओं का स्वाभाविक प्रयोग किया गया है। इनके काव्य में संवेदना और भावुकता का प्रमुख स्थान है -

कुलकानि तजी गुरु लोगन में बसि कै सब बैन कुबैन सहा।
परलोक नसाय सबै विधि सों उनमत्त को मारग जान गहा।।
जगमोहन धोय हया निज हाथन या तन पाल्यो है प्रेम महा।
सब छोड़ि तुम्हें हम पायो अहो तुम छोड़ि हमैं अहो पायो कहा ।।5।।

ठाकुर जगमोहन सिंह के विषय में कुमुद शर्मा लिखती हैं कि 'भारतेंदु-मंडल के रचनाकारों में एक 'प्रेम पथिक' कवि के रूप में पहचान बनाने वाले ठाकुर जगमोहन सिंह उन आधुनिक हिंदी निर्माताओं में से एक हैं जिन्होंने आधुनिक साहित्य को नए रूप-रंग के ढर्रे पर आगे बढ़ाया और उसकी पुरानी चाल-ढाल को भी सुरक्षित रखा। प्रेमभाव की सरस और कोमलतम अनुभूतियों तथा प्रकृति के ताजा टटके रंगों से कविता में जीवंतता भरी। कवि के रूप में उन्होंने प्रकृति और जीवन के रिश्तों की बारीक बुनावट को कविता में उतारकर आधुनिक हिंदी कविता को एक नया विधान दिया तो गद्यकार के रूप में प्रारंभिक गद्य को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।' आचार्य शुक्ल ने जहाँ रीतिकालीन कवि घनानंद को 'प्रेम का पथिक' करार दिया वहीं कुमुद शर्मा ने ठाकुर जगमोहन सिंह को आधुनिककालीन 'प्रेम-पथिक' माना है और ऐसा उनका मानना स्वाभाविक ही है चूँकि जगमोहन सिंह ने घनानंद की काव्य प्रवृत्ति को पल्लवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ठाकुर जगमोहन सिंह के काव्य में भारतेंदुयुगीन कवियों के समान परंपरा के प्रति आदर भाव था परंतु आसक्ति नहीं थी जिसके कारण वे अपने समकालीन कवियों से भिन्न दिखाई देते हैं। प्रकृति और प्रेम को आधार बनाकर उन्होंने काव्य के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए। उनके काव्य में अपने समकालिकों से अधिक व्यावहारिकता और लोकरूपता विद्यमान है। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा के उपरांत ठाकुर साहब मध्यप्रदेश सरकार में तहसीलदार के महत्वपूर्ण पद को आदि से अंत तक सुशोभित किया। इस संदर्भ में 'द्विवेदी-अभिनंदन-ग्रंथ' (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) में रायबहादुर हीरालाल बी.ए. ने लिखा है कि 'विद्याध्ययन पूरा करने पर सरकार ने आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त किया, जिससे आपको मध्यप्रदेश के अनेक भागों में भ्रमण करने और वनश्री का प्रकृत-सौंदर्य देखने का अवसर मिला। ...आप सरकारी नौकरी में आदि से अंत तक तहसीलदार ही बने रहे, क्योंकि आप बड़े स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे - डिप्टी कमिश्नरों अथवा कमिश्नरों की भी कुछ परवा न करते थे।' जिस तरह का यायावरी जीवन श्रीधर पाठक का था ठीक उसी तरह का जीवन ठाकुर साहब का भी व्यतीत हुआ। इसी कारण इन दोनों कवियों की कविताओं में प्रकृति के स्वच्छंद रूप का वर्णन सर्वाधिक दिखाई पड़ता है।

संस्कृत साहित्य से चली आ रही काव्य परंपरा को आधुनिक काल में ठाकुर जगमोहन सिंह ने सहारा दिया। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते

हैं कि 'संस्कृत के प्राचीन कवियों की प्रणाली पर हिंदी काव्य के संस्कार का जो संकेत ठाकुर साहब ने दिया, खेद है कि उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। प्राकृतिक वर्णन की इस प्राचीन भारतीय प्रणाली के संबंध में थोड़ा विचार करके हम आगे बढ़ते हैं। प्राकृतिक दृश्यों की ओर यह प्यार भरी सूक्ष्म दृष्टि प्राचीन संस्कृत काव्य की एक ऐसी विशेषता है जो फारसी या अरबी के काव्यक्षेत्र में नहीं पाई जाती। यूरोप के कवियों में जाकर ही यह मिलती है। अंग्रेजी साहित्य में वर्ड्सवर्थ, शेली, मेरेडिथ (wordsworth, shelly, Meredith) आदि में उसी ढंग का सूक्ष्म प्रतिनिरीक्षण और मनोरम रूप विधान पाया जाता है जैसा प्राचीन संस्कृत साहित्य में। प्राचीन भारतीय और नवीन यूरोपीय दृश्यविधान में पीछे थोड़ा लक्ष्य भेद हो गया। भारतीय प्रणाली में कवि भाव का आलंबन प्रकृति ही रही है, अतः उसके रूप का प्रत्यक्षीकरण ही काव्य का एक स्वतंत्र लक्ष्य दिखाई पड़ता है।' आचार्य शुक्ल ने उपर्युक्त उद्धरण में संस्कृत साहित्य से लेकर पाश्चात्य विद्वानों तक की काव्य शैली का ठाकुर जगमोहन सिंह के प्रसंग में संक्षिप्त वर्णन कर दिया है।

ठाकुर जगमोहन सिंह अपनी नौकरी के दौरान सोहागपुर में बहुत दिन तक रहे वहाँ पर अपने मित्र मुंशी कृष्ण कुमार के साथ स्वच्छंद रूप से जीवन यापन करते रहे। वहाँ दोनों मित्रों की प्रेमिकाएँ भी इनके साथ रहती थीं। ठाकुर साहब की प्रेमिका 'श्यामा', जाति की सुनारिन थी, जिसकी वजह से उसके हाथ का भोजन नहीं करते थे परंतु प्रेम अगाध करते थे। उनके इस तरह के अजीब व्यवहार और आचरण से उनके स्वच्छंद मनोवृत्ति का पता चलता है। उनके इस व्यक्तित्व का वर्णन रामचंद्र मिश्र ने अपने ग्रंथ में इस तरह से किया है, वे लिखते हैं कि 'ठाकुर साहब श्यामा के हाथ का बना हुआ भोजन न करते थे। बालाराम ब्राह्मण उनका चपरासी था और एक भोले नाम का ब्राह्मण उनकी रसोई बनाता था। कृष्ण कुमार भी राजपूतिन के हाथ का भोजन नहीं करते थे। उन दिनों अक्सर कृष्ण कुमार और ठाकुर साहब भोले के हाथ का पका हुआ भोजन साथ-साथ ही करते थे।' राजपूतिन, ठाकुर साहब के अभिन्न मित्र कृष्ण कुमार की प्रेमिका थी। इस अवतरण से यह स्पष्ट होता है कि ठाकुर साहब स्वच्छंद प्रकृति के होकर भी कहीं न कहीं अपनी परंपरा से आबद्ध रहे।

ठाकुर जगमोहन सिंह की रचनाएँ प्रकृति के साथ-साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध को भी एक विशिष्टता के साथ व्याख्यायित करती हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति और मनुष्य का गहरा रागात्मक संबंध दिखाई पड़ता है।

प्रकृति के नैसर्गिक और सूक्ष्म चित्रण में कवि की सृजनात्मकता व कल्पनाशीलता अपने विशिष्ट रूप में दिखलाई पड़ती है। प्राकृतिक सौंदर्य के अद्‌भुत वर्णन का एक बहुत बड़ा कारण इनका पद था, तहसीलदार व डिप्टी कलक्टर के गौरवशाली पद पर रहते हुए इन्हें कई बार प्रकृति की गोद में जाने का अवसर मिलता रहता था। इन्होंने प्राकृतिक छटाओं को एक कवि की आँखों से देखा तथा अंतर्मन की गहराई से उसका चित्रण किया है। प्रकृति के साथ शृंगार वर्णन में भी इनका मन बहुत रमा है। 'प्रेमसंपत्तिलता' में शृंगार का बहुत मनोहारी चित्रण किया गया है –

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगिकै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की बतियाँ।।
हम हारी अरी करि कोटि उपाय लिखी बहु नेहभरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनि मूरति के बिना कैसे कटे दुख की रतियाँ।।10

अंतिम की पंक्तियाँ आदिकालीन कवि अमीर खुसरो की गजल की याद को ताजा कर देती हैं। ठाकुर साहब का प्राकृतिक सौंदर्य और शृंगार वर्णन मन की गहराई तक उतर जाता है। भारतीय ग्रामीण जीवन की मधुरता व सरसता उनकी रचनाओं में अपनी जीवंतता के साथ व्यक्त हुई है। हिंदी साहित्य में प्रकृति और शृंगार का अभूतपूर्व चित्रण करने वाले ठाकुर जगमोहन सिंह आधुनिक हिंदी कविता और उपन्यास को एक नया आयाम देते हैं।

5

आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास

हिंदी साहित्य शुरू करने का श्रेय प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान लेखक गार्सा दतासी को दिया जा सकता है। हिंदी गद्य के अविभाज्य के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ 10वीं शताब्दी मांनते हैं कुछ 11 वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती है। माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी। खड़ी बोली के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित चंद छंद बरनन की महिमा में होते हैं अध्ययन की दृष्टि से हिंदी गद्य साहित्य के विकास को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है। हिन्दी गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) पूर्व भारतेंदु युग(प्राचीन युग)–13 century ईस्वी से 1868 ईस्वी तक।

(2) भारतेंदु युग(नवजागरण काल)–1868-1900

ईस्वी से 1900 ईस्वी तक

(3) द्विवेदी युग–1900 ईस्वी से 1922 ईस्वी तक।

(4) शुक्ल युग (छायावादी युग)–1922 ईस्वी से 1938 ईस्वी तक

(5) शुक्लोत्तर युग (छायावादोत्तर युग)–1938 ईस्वी से 1947

आज तक

(6) स्वातंत्र्योत्तर युग–1947 से अब तक।

Soure:NCERT Hindi UP board- By:नीरज यादव - अभय गौड

19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य के उद्‌भव को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान हिन्दी गद्य की शुरूआत 19वीं सदी से ही मानते हैं जबकि कुछ अन्य हिन्दी गद्य की परम्परा को 11वीं-12वीं सदी तक ले जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की निम्न परम्पराएं मिलती हैं-

(1) राजस्थानी में हिन्दी गद्य

(2) ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य

(3) दक्खिनी में हिन्दी गद्य

(4) गुरूमुखी लिपि में हिन्दी गद्य

भारतेंदु पूर्व युग

हिन्दी में गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खडी बोली को स्थान मिला। ये सभी कृतियाँ सन् 1803 में रची गयी थीं।

आधुनिक खड़ी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने 1815 ईस्वी में वेदांत सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने 1829 में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही 1826 में कानपुर के पं जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला. इसी समय गुजराती भाषी आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली. साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं- चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी. ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए। इस काल में निबंध नाटक उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई. इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी. इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

बलदेव अग्रहरि की सन् 1887 में प्रकाशित नाट्य पुस्तक 'सुलोचना सती' में सुलोचना की कथा के साथ आधुनिक कथा को भी स्थान दिया गया हैं, जिसमें संपादकों और देश सुधारकों पर व्यंग्य किया गया हैं। कई नाटको में मुख्य कथानक ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। बलदेव अग्रहरि की सुलोचना सती में भिन्नतुकांत छंद का आग्रह भी दिखाई देता हैं।

द्विवेदी युग

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन्1903 ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला. उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बडे समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए। इस युग ने कई सम्पादकों को जन्म दिया। पन्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आधा दर्जन से अधिक पत्रों का सम्पादन किया। शिव पूजन सहाय उनके योग्य शिष्यों में शुमार हुए। इस युग में हिन्दी आलोचना को एक दिशा मिली। इस युग ने हिन्दी के विकास की नींव रखी। यह कई मायनों में नई मान्यताओं की स्थापना करने वाला युग रहा।

रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल और नीति का विषय ही नहीं रहा बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन

एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाडी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियां खूब लोकप्रिय हुई। इसकाल के अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुंमुखी विकास हुआ। पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसांई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की. नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को

समृद्ध किया। आज गद्य की अनेक नयी विधाओं जैसे यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएं एक-दूसरे से मिल रही हैं।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 'भारतीय इतिहास' के बदलते हुए स्वरूप से काफी प्रभावित था। 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव भी साहित्य में आ गया था। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का भी तेजी से विकास हुआ। अंग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ-साथ मानव को महत्त्व दिया जाने लगा था। भावना के साथ-साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ ही गद्य का भी पर्याप्त विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नयी क्रांति का बीजारोपण हुआ।

गद्य का विकास

आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास केवल हिन्दी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रह गया था। पूरे देश में और हर प्रदेश में हिन्दी की लोकप्रियता व्याप्त होने लगी थी और अनेक अन्य भाषी लेखकों ने भी हिन्दी में साहित्य की रचना करके इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। हिन्दी गद्य के विकास को निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है-

भारतेन्दु पूर्व युग - (1800 ई. से 1850 ई. तक)
भारतेन्दु युग - (1850 ई. से 1900 ई. तक)
द्विवेदी युग - (1900 ई. से 1920 ई. तक)
रामचन्द्र शुक्ल तथा प्रेमचन्द युग - (1920 ई. से 1936 ई. तक)
अद्यतन युग - (1936 ई. से आज तक)

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य का विकास

आधुनिक काल में लिखी जाने वाली कविता को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

नवजागरण काल (भारतेन्दु युग) - 1850 ई. से 1900 ई. तक
सुधार काल (द्विवेदी युग) - 1900 ई. से 1920 ई. तक
छायावादी युग - 1920 ई. से 1936 ई. तक

प्रगतिवाद-प्रयोगवाद - 1936 ई. से 1953 ई. तक
नई कविता व समकालीन कविता - 1953 ई. से अब तक

नवजागरण काल (भारतेन्दु युग)

इस काल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पहली बार जन-जीवन की समस्याओं से सीधे जुड़ती है। इसमें भक्ति और श्रंगार के साथ साथ समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई। पारंपरिक विषयों की कविता का माध्यम ब्रजभाषा ही रही, लेकिन जहाँ ये कविताएँ नवजागरण के स्वर की अभिव्यक्ति करती हैं, वहाँ इनकी भाषा हिन्दी हो जाती है। कवियों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्व प्रधान रहा। उन्हें नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान की वकालत की। अन्य कवियों में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'पेमघन' के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुधार काल (द्विवेदी युग)

हिन्दी कविता को नया रंगरूप देने में श्रीधर पाठक का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्हें 'प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि' कहा जाता है। उनकी 'एकांत योगी' और 'कश्मीर सुषमा' खड़ी बोली की सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रामनरेश द्विवेदी ने अपने 'पथिक मिलन' और 'स्वप्न' महाकाव्यों में इस धारा का विकास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' को खड़ी बोली का पहला महाकाव्य माना गया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में अनेक काव्यों की रचना की। इन काव्यों में 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' और 'जयभारत' आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी 'भारत भारती' में स्वाधीनता आंदोलन की ललकार है। राष्ट्रीय प्रेम उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है। इस काल के अन्य कवियों में सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी युग

कविता की दृष्टि से इस काल में एक-दूसरी धारा भी थी, जो सीधे-सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', श्रीकृष्ण सरल आदि के नाम

उल्लेखनीय हैं। इस युग की प्रमुख कृतियों में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और 'आँसू', सुमित्रानंदन पंत का 'पल्लव', 'गुंजन' और 'वीणा', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की 'गीतिका' और 'अनामिका', तथा महादेवी वर्मा की 'यामा', 'दीपशिखा' और 'सांध्यगीत' आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। 'कामायनी' को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है। छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी काव्य में आत्मपरकता, प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्व मानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इसी काल में मानव मन सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिन्दी भाषा में विकसित हुई।

प्रगतिवाद

वर्ष 1936 के आसपास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। युग की मांग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकरजी ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के नाम उल्लेखनीय हैं। इस धारा में समाज के शोषित वर्ग मजदूर और किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गयी और हिन्दी कविता एक बार फिर खेतों और खलिहानों से जुड़ी गई।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकर किया गया। सन्1943 में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' का प्रकाशन किया। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग किये। अतरू 'तार सप्तक' को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित 'प्रतीक' में इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

नई कविता और समकालीन कविता

सन् 1953 ई. में इलाहाबाद से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में नई कविता को प्रयोगवाद से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित किया गया। दूसरा सप्तक (1951), तीसरा सप्तक (1951) तथा चौथे सप्तक के कवियों को भी नए कवि कहा गया। वस्तुतः नई कविता को प्रयोगवाद का ही भिन्न रूप माना जाता है। इसमें भी दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं-

वैयक्तिकता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाली धारा - इसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त प्रमुख हैं।

प्रगतिशील धारा - जिसमें गजानन माधव 'मुक्तिबोध', रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह तथा सुदामा पांडेय धूमिल आदि उल्लेखनीय हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इन दोनों धराओं का मेल दिखाई पड़ता है। इन दोनों ही धाराओं में अनुभव की प्रामाणिकता, लघुमानव की प्रतिष्ठा तथा बौधिकता का आग्रह आदि प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। साधारण बोलचाल की शब्दावली में असाधारण अर्थ भर देना इनकी भाषा की विशेषता है। समकालीन कविता में गीत, नवगीत और गजल की ओर रुझान बढ़ा है। आज हिन्दी की निरंतर गतिशील और व्यापक होती हुई काव्य धारा में संपूर्ण भारत के सभी प्रदेशों के साथ ही साथ संपूर्ण विश्व में लोकिप्रिय हो रही है। इसमें आज देश विदेश में रहने वाले अनेक नागरिकताओं के असंख्य विद्वानों और प्रवासी भारतीयों का योगदान निरंतर जारी है।

❐❐❐